

वैदिकवार्ता

अगस्त १९६२

*

५० नये पैसे

अ र वि न्द वि शे षां क

★

वेदोंके महान् तत्वज्ञ - श्री अरविन्द घोष

य परिचय कराया है ।

॥) और डा. व्य. =)

) और डा. व्य. १।)

-अण्डल,

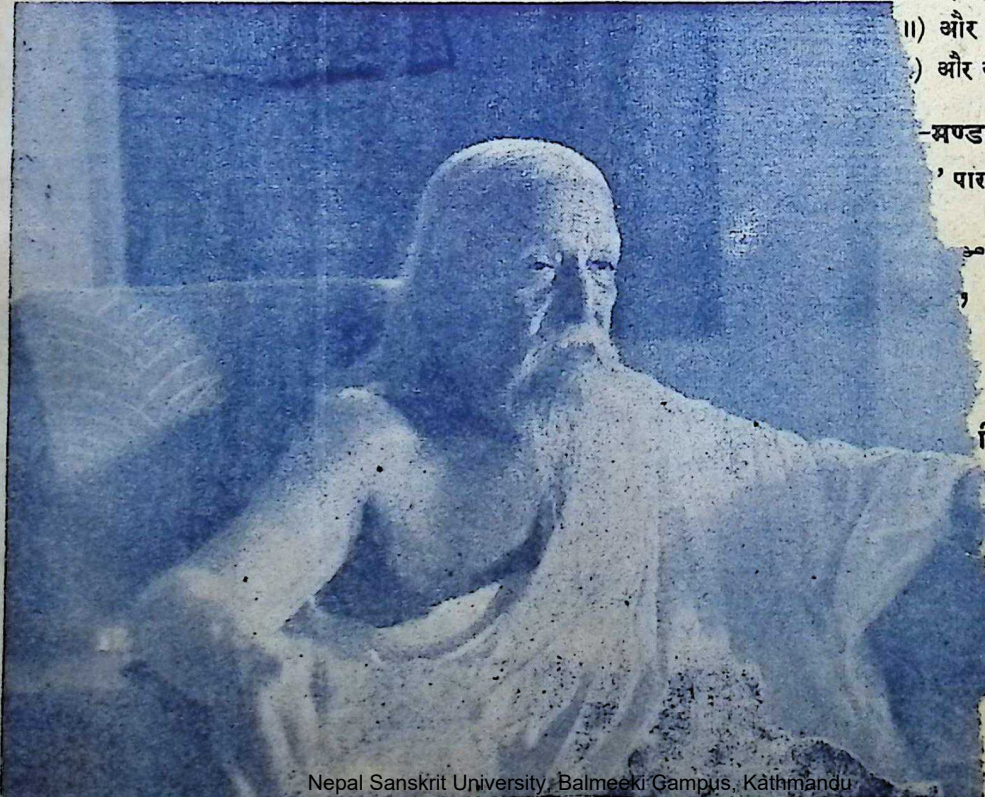
' पारडी [जि. सूरत]

५) रु.

लिये रु. ६.५०

ग रहेगा ।

[जि. सूरत]



२

वर्ष
४३

वैदिक धर्म

अंक
८

क्रमांक १६४ : अगस्त १९६२

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

- १ अमृतत्व हमें प्राप्त हो (वैदिक प्रार्थना) २८७
- २ स्वाध्याय-मण्डल वृत्त २८८
- ३ अखिल भारतीय भाषा सम्मेलन
संयोजक श्री डॉ. रघुवीर २८९
- ४ समालोचना २९०
- ५ सम्पादकीय २९१
- ६ वेदके बारेमें श्री अरविन्द २९२
- ७ वैदिकवादका सिंहावलोकन श्री अरविन्द २९३
- ८ वैदिक साहित्य श्री अरविन्द २९८
- ९ कुछ वैदिक प्रतीक श्री अरविन्द ३०५
- १० आध्यात्मिकवादके आधार श्री अरविन्द ३०८
- ११ वैदिक अग्नि श्री अरविन्द ३१८
- १२ वेदोंके गुह्यार्थक होनेकी परम्परा
श्री अरविन्द ३२१
- १३ दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?
श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर ४९-५६

संस्कृत-पाठ-माला

(चौबीस भाग)

[संस्कृत-भाषाके अध्ययन करनेका सुगम उपाय]

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

- भाग १-३ इनमें संस्कृतके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है ।
- भाग ४ इसमें संधिविचार बताया है ।
- भाग ५-६ इनमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया है ।
- भाग ७-१० इनमें पुङ्क्ति, लीलिङ और नपुंसकलिङगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है ।
- भाग ११ इसमें “ सर्वनाम ” के रूप बताये हैं ।
- भाग १२ इसमें समासोंका विचार किया है ।
- भाग १३-१८ इनमें क्रियापद-विचारकी पाठविधि बताई है ।
- भाग १९-२४ इनमें वेदके साथ परिचय कराया है ।
प्रत्येक पुस्तकका मूल्य ॥) और डा. व्य. ८)
२४ पुस्तकोंका मूल्य १२) और डा. व्य. १॥)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल,

पो. ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. सुरत]

“ वैदिक धर्म ”

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

बी. पी. से रु. ५-६२, विदेशके लिये रु. ६-५०
डाक व्यय अलग रहेगा ।

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल,

पो.- ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. सुरत]

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

‘वेद’ मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हर एक आय धर्मोंको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	.५०
३ सामवेद संहिता	२)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५

बड़े अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	२)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अथवा ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये देवता-मंत्र-संग्रह मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता- (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम-मरुदेवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इन्द्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुदेवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत संहिता- (द्वितीय भाग)

अश्विनौ-आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव।

इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदिति: आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवा: मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता- (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुदेवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)
(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)		

१ मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन	१)	.२५
२ मेघातिथि	२)	.२५
३ शुनःशेष	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप	१)	.२५
५ काण्व	२)	.२५
६ सव्य	१)	.२५
७ नोधा	१)	.२५
८ पराचर.	१)	.२५
९ गोतम	२)	.३७
१० कुत्स	२)	.३७
११ त्रित	१.५०	.३१
१२ संवनन	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ	.५०	.१२
१४ नारायण	१)	.२५
१५ बृहस्पति	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ	७)	१)
२० भरद्वाज	७)	१.५०

मन्त्री— ‘स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट— ‘स्वाध्याय मण्डल (पारडी)’ [जि. सूरत]



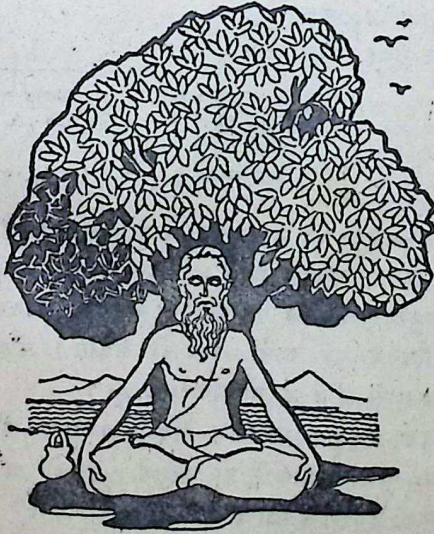
श्रावण : विक्रम संवत् २०१९

वैदिकधर्म

अमृतत्व हमें प्राप्त हो

विवस्वानो अमृतत्वे दधातु
परैतु मृत्युर्मृतं न पेतु ।
इमात्रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो
मो ज्वेषामसवो यमं गुः ॥

अथर्व. १८।३।६२



(विवस्वान्) सूर्य (नः अमृतत्वे दधातु) हमें अमर-
तामें स्थापित करे, (मृत्युः परा एतु) हमसे मृत्यु दूर जावे,
(नः अमृतं एतु) हमारे पास अमरता जा जावे । वही
विवस्वान् (हमान् पुरुषान्) इन पुरुषोंको (आ जरिम्णः)
वृद्धावस्था पर्यंत (रक्षतु) सुरक्षा करे । (एषां असवः)
इनके प्राण (मा यमं गुः) यमके पास शीघ्र न जाय ॥

सूर्य हमें दीर्घजीवन देवे । सूर्य प्रकाशसे मृत्यु दूर हो
जावे । अर्थात् हमारे पास अमरत्व जा जाय । वही सूर्य
इन सब मनुष्योंकी सुरक्षा करे । वृद्ध अवस्था तक ये लोग
जीवित रहें । इनके प्राण जलदी न दूर हो जाय ।



स्वाध्याय-मंडल-वृत्त

स्वाध्याय मण्डल वृत्त— इस मासमें वेदमुद्रण-निधिमें नीचे लिखे अनुसार रकम मिली है।

श्री. जनुभाई परागजी देसाई, हरीया	२१
„ अमृतलाल ब्रजभूखणदास पटेल, धरमपुर	२०
„ ठाकुरलाल मिलापचन्द शाह, सूरत	५१
„ नरेन्द्र मुल्जी, मुंबई	१०१
„ ज. शा. देशपांडे, दादर-मुंबई १४	४५
„ देवजीभाई रामवीभाई टंडेल, कोलक (सूरत)	२१.२५
„ पद्मनाभ पालयेशास्त्री, दादर-मुंबई १४	१०
„ कल्याणजी वेचरभाई, जीयोर कुंभेश्वर	५०
„ भाऊराव सिकाजी नाईक, उमराळे	१.२५
„ पद्मनाथशास्त्री, दादर-मुंबई १४	१०
„ कंचनलाल वरजदास, जोगेश्वरी	१५

आशीर्वाद टीकीट

श्री. दामाजी जिवन वर्तक, माहिम	३
„ काशिनाथ केशव संखे	३
„ नाना पिला राऊत	३
„ पद्मन माधव वर्तक	३
„ शंकर शिणवार म्हात्रे	३
„ कुसुमानंद बाळकृष्ण चौधरी	३
„ हरी रामजी म्हात्रे	३
„ पांडु जीवन वर्तक	३
„ जनार्दन नाना म्हात्रे, केळवेबंदर पाखाडी (ता. पालघर)	१
„ जनार्दन नाना घरत	१
„ बळीराम तुकाराम मोई, मायखोप	१
„ गणपत दादू मोईर	१
„ भालचंद्र गोविंद पाटील	१
„ चिंतामण विठोबा म्हाले	१
„ यशवंत शिणवार किणी	१
„ विष्णू दामोदर उवाले, पालघर	१
„ देविलाल खेमजी, केळवारोड	१
„ अनंत रामचंद्र इनामदार	१
„ रामचंद्र रामदयाल शुक्ल, पालघर	१
„ लक्ष्मण अनाजी घरत, नवली	१
„ माणकू रडकू पाटील, काटाळे	१

श्री. तुकाराम बु. माळी, तारापुर	१
„ दामोदर रामचंद्र पाटील, पालघर	१
„ भगिरथ गोविंद तुमडे, पालघर	१
„ सखाराम विठ्ठल पाटील, नवली	१
„ कृष्णा कोरगां शेटी, पासघर	१
„ शिवशंकर तेवारी	१
„ शंकर जातु पाटील, वेवुर	१
„ जिवाभाई एफ. पटेल, कमारे	१
„ गणपत बाळा पुरव	१
„ दशरथ गणपत पुरव	१
„ जेठालाल खुशालदास पटेल, पालघर	१
„ अच्युत तुकाराम आजगांवकर	१
„ पुष्पात्तम तुकाराम आजगांवकर	१
„ डी. टी. आजगांवकर	१
„ य. वि. दांडेकर	१
„ इयामकरण बचु डुवे	१
„ काशिनाथ शिणवार पाटील, नवली	१
„ तोलाराम जिवनराम ठौरानी, पालघर	१
सौ. रुखमीणि तुकाराम माळी, तारापुर	१
श्री. नाना नारायण पाटील, उमरोळी	१
„ गोविंद महादेव राऊत	१
„ चिंतामण शंकर राऊत, कमोर	१

कुल रु.	४०४.५०
पूर्व प्रकाशित रु.	१,१९,५९४.५३
कुल जमा रु.	१,१९,९९९.०३

स्वाध्यायमंडलका वेद प्रकाशनका कार्य चल रहा है। इसके लिये धनकी आवश्यकता है। पाठक दानके रूपसे जयवा पुस्तकोंके खरीदनेसे सहायता कर सकते हैं। धनकी सहायता मिलनेसे यह कार्य सस्वर हो सकेगा। पाठक इसका विचार करें और जो हो सकता है करें।

यहां वेदका अनुवाद प्रकाशन हिंदी, गुजराती और मराठी ऐसे तीन भाषाओंमें हो रहा है। इसको भी समाप्त करनेकी हमारी इच्छा है।

मंत्री- स्वाध्याय मंडल, पारडी

अखिल भारतीय भाषा सम्मेलन

मुझे विश्वास है कि आप अपनी भाषाको अत्यधिक प्रेम करते हैं। सन् १९४७ में स्वतन्त्र होने पर हम सबने जाणा-की थी कि स्वतन्त्र भारतमें जनसामान्यकी भाषाएं ही शिक्षा, न्याय, व्यापार, शासन आदिके क्षेत्रमें प्रयोग की जाएंगी।

आज हमें स्वतन्त्र हुए १५ वर्ष हो चुके हैं, भारतमें एक भाषा-आपी राज्योंका निर्माण भी हो चुका है किन्तु फिर भी हमारी भाषाओंको उनका उचित स्थान न मिल सका है।

आज अभी तक अंग्रेजी उस स्थानको अनधिकृत रूपसे ग्रहण किए हुए है जो स्थान वास्तवमें हमारी मातृभाषाओंका है। आज राज्योंमें विधान राज्यकी भाषामें नहीं बनाए जाते। राज्योंके शासनमें राज्योंकी भाषाओंका कोई आदर नहीं। यहां तक कि लोगोंको अपनी मातृभाषाओंमें पढ़नेके लिए यथेष्ट पुस्तकें भी उपलब्ध नहीं। केन्द्र एवं राज्यों दोनों ही स्थानों पर अंग्रेजी अपना आधिपत्य जमाए हुए है।

स्वतन्त्र भारतके संविधानमें यह व्यवस्था की गई थी कि १९६५ के पश्चात् प्रशासन एवं न्यायालयोंमें अंग्रेजीका प्रयोग बन्द कर दिया जाएगा। यदि आज शासन इस व्यवस्थाके अनुसार चलनेको तैयार हो जाए तो प्रत्येक भारतीय भाषाको अपने-अपने क्षेत्रमें उचित स्थान मिल सकता है। तभी आप जैसे देशभक्त भी अपनी भाषाओंकी पूर्ण रूपसे सेवा कर सकते हैं।

आपको यह भी विदित ही है कि लोकसभाके पिछले सत्रमें गृहमन्त्री श्री काल बहादुर शास्त्रीजीने घोषणा की थी कि लोकसभाके ६ जगहसे आरम्भ होनेवाले सत्रमें वे अंग्रेजीको अनिश्चित काल तक भारतकी राष्ट्रभाषा बनानेके लिए एक विधेयक प्रस्तुत करेंगे। इस विधेयकमें अंग्रेजीके प्रयोगके लिए कोई अवधि निर्धारित नहीं की जाएगी जिसका अर्थ होगा कि वह सदैव-सदैव तक उन सारे कार्योंमें प्रयोग होती रहेगी जिनमें वह आंग्ल शासन-काल

से लेकर अब तक प्रयोग होती रही है। यह विचारणीय प्रश्न है कि तब हमारी भाषाओंका भविष्य कितना अंधकारमय हो जाएगा। छात्रवर्गकी रुचि अपनी मातृभाषाओंसे रुझा होती जा रही है क्योंकि आज उनकी उन्नतिका मार्ग केवल अंग्रेजीके माध्यमसे ही खुला छोड़ा गया है। अनिश्चित काल तक भारतीय भाषाओंकी यह दीन स्थिति वास्तवमें सारे भारतीय वाङ्मयकी दीन स्थितिकी प्रवर्तक होगी। तब कोई अपनी भाषाका साहित्य पढ़ेगा ही क्यों ?

इस बातसे तो आप भी सहमत होंगे कि कोई भी देशभक्त व्यक्ति इसे न चाहेगा, किन्तु शासनने जनसामान्यकी मनोवृत्ति इतनी दूषित कर दी है कि जाधिकांश व्यक्तियोंने इस सम्बन्धमें विचार करना ही छोड़ दिया है। आज वे अपनी विचारशक्तिको सर्वथा तिलांजलि देकर प्रत्येक स्थितिको अपरिहार्य कहनेके अभ्यस्त हो गए हैं। हमारे शासनके कुछ गिने-चुने व्यक्ति एवं अंग्रेजी जाननेवाले कतिपय व्यक्ति जिनकी संख्या भारतकी समग्र जनसंख्याकी २ प्रतिशत भी नहीं है, अपने निहित स्वार्थोंके लिए सारी भारतीय जनताकी भावनाओंकी बलि देने पर तुरंत हुए हैं।

ऐसे समयमें आप जैसे व्यक्तियोंका यह कर्तव्य हो जाता है कि वे स्वयं सामने आकर राष्ट्रको सच्चा नेतृत्व प्रदान करें तथा राष्ट्रकी जनताको सच्चे कर्तव्यका बोध कराएं।

हमारा देश लोकतंत्र राष्ट्र कहलाता है किन्तु सच्चा जनतंत्र तभी स्थापित हो सकता है जब उसमें लोगोंकी भाषा को सर्वोच्च स्थान प्राप्त हो। अतः हम सबको अंग्रेजीको भारतके सिंहासन पर अधिष्ठित करनेके लिए प्रस्तुत किए जानेवाले इस विधेयकका पूर्ण शक्तिसे विरोध करनेके लिए सज्ज हो जाना चाहिए।

अभी पिछले दिनों उत्तर तथा दक्षिण भारतकी भाषाओंके जाननेवाले दिल्लीमें सम्मिलित हुए थे तथा उन्होंने यह निश्चय किया कि इस विधेयकके प्रस्तुत किए जानेके

(शेष पृष्ठ २९० पर)

स मा लो च ना

✱

१ कालिदास-चरितम्

ले. श्री. श्री. मि. वेलणकर; प्रकाशक श्री ग. का. रायकर; गीर्वाण सुधा प्रकाशनम्, साववा बाडी, मुम्बई २ पृष्ठ सं. १०७; मूल्य ३)

ऐसा कौन साहित्य प्रेमी होगा, जो महाकवि कालिदासके नामसे अपरिचित हो ? कालिदासके विषयमें जब तक बहुत कुछ लिखा जा चुका है। पर उनके चरित्रका अधिकांश भाग अभी तक संदिग्धभावस्थामें ही है। उनके चरित्र पर जनेक विद्वानोंने खोजें की और अभी भी बहुत कुछ शेष है।

उपर्युक्त ग्रंथ भी, जैसा कि शीर्षकसे ही स्पष्ट है, महाकविके चरित्र पर प्रकाश डालता है। प्रस्तुत ग्रंथ एक संस्कृत नाटिका है। ग्रंथकार श्री वेलणकर संस्कृत वाङ्मयके जाने माने विद्वान् हैं। उनके जनेक ग्रंथ रत्नोंसे संस्कृत साहित्यकी भी वृद्धि हुई है। 'कालिदास-चरितम्' भी उनकी साहित्यिक प्रतिभाका परिचायक है। ग्रन्थकी भाषा अतिशय सरल है। इसी कारण यह नाटिका रंगमंचके लिए अत्यन्त उपयोगी है। प्रतीत होता है कि यह नाटिका पूर्व भी रंगमंचके द्वारा नाटक प्रेमियोंका मनोरंजन कर चुकी है। ग्रन्थमें काव्य सौष्ठव है, भावगांभीर्य है और इन सबके साथ भाषाका सारल्य है। ऐसे ग्रंथोंकी आज अत्यन्त आवश्यकता है, जो लोगोंके मस्तिष्क पर छापे हुए संस्कृत भाषाकी दुरुहताके भावोंको हटाकर उसके प्रति प्रेम और आकर्षण पैदा करें।

नाटिकाके लिए लेखक व प्रकाशक बधाईके योग्य हैं।

(पृष्ठ २८९ का शेष)

समय ११ एवं १२ जगत्को दिलीमें एक जल्लि भारतीय भाषा सम्मेलनका आयोजन हो जिसमें विधेयकका व्यापक विरोध करनेके लिए विस्तृत कार्यक्रम बनाया जाए।

इस विधेयकके जानेसे सारी ही भारतीय भाषाएं अवन्तिके गर्तमें जाएंगी। यह समझना कि अंग्रेजी केवल हिन्दीका ही स्थान लेगी, भयंकर मूल होगी।

२ हमारा धर्म और उसकी वैज्ञानिक रूपरेखा

ले. श्री नारायणसिंह, प्रकाशक- हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग; पृष्ठ, २४६; मूल्य ३)

आजका भारतीय युवक समाज या कहिए नहीं पीढ़ी धर्मके नाम पर ही नाक भौं सिकोडती है। उनके विचारमें धर्मकी इसके जलावा और कोई उपयोगिता नहीं है कि कुछ गिने-चुने पाखण्डी इसके नाम पर अपनी जीविका चलावें। पर इस प्रकारके विचारके लिए हम तरुणोंको ही दोषी ठहरायें यह अनुचित होगा। क्योंकि धर्मका बाह्य कलेवर आज इतना विकृत हो चुका है, कि इसके सम्पर्कमें जानेवाला हर कोई इसी तरहके विचारोंको अपनायेगा। इसका इलाज केवल यही है कि हम धर्मके बाह्य विकृत रूपको नष्ट करके उसके वास्तविक रूपको लोगोंके सामने रखें। अभीतक अवैज्ञानिक माने जानेवाले धर्मके वैज्ञानिक रूपको हम प्रकाशमें लाएं।

प्रसन्नताका विषय है कि श्री नारायणसिंहजीका इस दिशामें किया हुआ प्रथम प्रयास पुस्तकके रूपमें साहित्य सम्मेलन प्रयागने लोगोंके सामने रखा है। वस्तुतः धर्म किसी व्यक्ति, समाज व राष्ट्रकी बपौती नहीं है, वह तो सार्वजनीन है, हरएक उसका लाभ उठा सकता है। हरएक धार्मिक बनाया जा सकता है बशर्ते कि उसमें धर्मके प्रति आकर्षण उत्पन्न किया जाए। प्रस्तुत ग्रंथके लेखकने भर-सक यत्न किया है, और धर्मके वैज्ञानिक स्वरूपको लोगोंके सामने रखनेकी यथासाध्य कोशिश की है। मुझे पुस्तकका विषय, उसकी प्रतिपादन-शैली बड़ी आकर्षक लगी।

मेरा अनुरोध है, कि वे, जो धर्मको ढकोसला समझते हैं, इस पुस्तकको अवश्य पढ़ें। ● ● ●

यह ऐतिहासिक महत्वका विषय है। अंग्रेजी एक शक्ति-शालिनी धारा है जो हमारी भाषाओं एवं उनके साहित्यको पूर्णतया ध्वस्त कर देगी। तब हमारी संस्कृति कहाँ रह जाएगी। आज भारतका व्यक्तित्व ही संकटमें पड़ गया है।

आचार्य डाक्टर रघुवीर संयोजक,

जल्लि भारतीय भाषा सम्मेलन

जे. २२, हाज खास इन्क्वेव, नई दिल्ली-१६

सम्पादकीय

★

१९ अगस्त श्री अरविन्द तथा नवीन भारतका जन्मदिन है। आज हम बड़े आनन्दके साथ प्राचीन भारतीके पाठकोंके सामने यह श्री अरविन्दाङ्क रख रहे हैं। आशा है यह विशेषाङ्क उन्हें श्री अरविन्दके महान् कार्योंकी एक झंकी दे सकेगा तथा भारतके सच्चे उत्थानका मार्ग दिखाएगा।

पाठक देखेंगे कि हमने इस अङ्कमें श्री अरविन्दके व्यक्तित्वके बारेमें बहुत ही कम सामग्री रखी है। अधिकतर लेख स्वयं श्री अरविन्द तथा माताजीके हैं। इसका कारण है। श्री अरविन्दने कहा है कि उनका जीवन बाह्य तल पर नहीं रहा है। उनके जीवनमें जो मुख्य तत्व थे वे सब अन्दर थे और अन्दरकी बातें जान ही कौन सकता है? परन्तु श्री अरविन्दने हमारे पथ-प्रदर्शनके लिए जो साहित्य रचा था उसमें जरासा चंचु-पात ही हमें बहुत दूर तक पहुंचा सकता है।

श्री अरविन्दने अनेक विषयों पर लिखा है। शायद मानव जीवनमें आनेवाली कोई समस्या ऐसी नहीं है जिस पर श्री अरविन्दकी लेखनीसे कुछ न कुछ न निकला हो। आदिम मानवकी सामाजिक स्थितिसे लेकर भविष्यके विश्वराज्य तक पर प्रकाश डाला है। Ideal of human unity तथा human cycle पढ़नेसे ऐसा प्रतीत होता है मानों इनके अनेक प्रसंग अद्यतन समस्याओंका अध्ययन करनेके बाद लिखे गये हैं, भारत सम्बन्धी लेखोंमें भाषागत विभाजन तथा चीनकी समस्या पर भी बहुत कुछ कहा गया है।

भारतीय संस्कृतिको लें तो वेद उपनिषद आदिसे लेकर आधुनिक काल तककी सांस्कृतिक चीजोंको एक नयी दृष्टिसे दिखाया गया है।

—o—

वेदके बारेमें

(श्री अरविन्द)



वैदिक मन्त्र उस ऋषिके लिये जिसने उसकी रचना की थी, स्वयं अपने लिये तथा दूसरोंके लिये आध्यात्मिक प्रग-
तिका साधन था। वह उसकी आत्मासे उठा था ...।

पूर्णताकी प्राप्तिके लिए संघर्ष करनेवाले ज्ञार्थके हाथमें वह (वेदमन्त्र) एक बाखड़ा काम देता था।

वे (वेद) असभ्य, जंगली और आदिम कारीगरोंकी कृति नहीं है बल्कि वे एक परम कला और सचेतन कलाके सजीव निःश्वास हैं।

(वेद) जैसे की अपनी भाषामें और अपने छन्दोंमें वैसे ही अपनी विचार रचनामें भी जाश्चर्यजनक हैं।

(वेदका सावण भाष्य) एक ऐसी चाबी है जिसने वेदके आन्तरिक जाशय पर दोहरा ताला लगा दिया है, तो भी वह वैदिक शिक्षाकी प्रारम्भिक कोठरियोंको खोलनेके लिये अत्यन्त अनिवार्य है... प्रत्येक पग पर हम उसके साथ मतभेद रखनेके लिये बाध्य हैं, पर प्रत्येक पग पर इसका प्रयोग करनेके लिये भी बाध्य हैं।

वेदकी प्राचीन पुस्तक उस (योरोपियन) पाण्डित्यके हाथमें आयी जो परिश्रमी, विचारमें साहसी..... किन्तु फिर भी प्राचीन रहस्यवादी कवियोंकी प्रणालीको समझनेके अनुरोध था।

इवानन्दने ऋषियोंके भाषा संबंधी रहस्यका मूल सूत्र हमें पकड़ा दिया है और वैदिक धर्मके एक केंद्र भूत विचार (अनेक देव एक परम देवमें जा जाते हैं) पर फिरसे बल दिया है।

मैंने यह देखा कि वेदके मंत्र, एक स्पष्ट और ठीक प्रकाशके साथ, मेरी अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियोंको प्रकाशित करते हैं।

वे (वेद) न केवल संसारके कुछ सर्वोत्कृष्ट और गंभीरतम धर्मोंके अपितु उनके कुछ सूक्ष्मतम परामौक्तिक

दर्शनोंके भी सुविख्यात आदि स्रोतके रूपमें माने जाते रहे हैं।

' वेद ' यह उस सर्वोच्च आध्यात्मिक सत्यके लिये माना हुआ नाम है जहांतक कि मनुष्यके मनकी गति हो सकती है।

स्वयं ऋग्वेद मानव विचारके उस प्रारम्भ कालसे आया एक बड़ा भारी विविध उपदेशोंका ग्रंथ है जिस विचारके ही टूटे-फूटे अवशेष वे ऐतिहासिक एल्लिनिनियन तथा औफिक रहस्य वचन थे।

और इस (वेद) की भाषाको ऐसे शब्दों और जलं-कारोंमें आवृत कर दिया था जो कि एक ही साथ विशिष्ट लोगोंके लिये आध्यात्मिक अर्थ तथा साधारण पूजार्थियोंके समुदायके लिये एक स्थूल अर्थ प्रकट करती थी।

ऋषि सूक्तका वैयक्तिक रूपसे स्वयं निर्माता नहीं था, वह तो दृष्टा या एक सनातन सत्यका और एक अपौरुषेय ज्ञानका।

(वेद) दिव्य बाणी है जो कंपन करती हुई असीममेंसे निकल कर उस मनुष्यके अन्तः श्रवणमें पहुंची जिसने पहिलेसे ही अपने आपको अपौरुषेय ज्ञानका पात्र बना रखा था।

अपने गूढ़ अर्थमें भी जैसे कि अपने साधारण अर्थमें, यह (वेद) कर्मोंकी पुस्तक है; आभ्यन्तर और बाह्य यज्ञकी पुस्तक है; यह है आत्माकी संग्राम और विजयकी सूक्ति जब कि वह विचार और अनुभूतिके उन स्रोतोंको जोजक पा लेता है और उनमें आरोहण करता है जो कि भौतिक जगत्वा पञ्चाविक मनुष्यसे दुष्प्राप्य है।

यह (वेद) हैं मनुष्यकी तरफसे उन दिव्य ज्योति, दिव्य शक्ति और दिव्य कृपाओंकी स्तुति जो मर्त्यमें कार्य करती हैं।

वैदिकवादका सिंहावलोकन

(श्री अरविन्द)



वेद एक ऐसे युगकी रचना है जो हमारे बौद्धिक दर्शनोंसे प्राचीन था। उस प्रारम्भिक युगमें विचार हमारे तर्कशास्त्रकी युक्ति प्रणालीकी अपेक्षा भिन्न प्रणालियोंसे प्रारम्भ होता था। और भाषाकी अभिव्यक्तिके प्रकार ऐसे होते थे जो हमारी वर्तमान भादतोंमें बिल्कुल अनुपादेय ठहरते। उस समय बुद्धिमान्से बुद्धिमान् मनुष्य अपने सामान्य व्यवहारिक बोधों तथा दैनिक क्रियाकलापोंसे परेके बाकी सब ज्ञानके लिये आभ्यन्तर अनुभूति पर और जन्तु-ज्ञान युक्त मनकी सूक्ष्मता पर निर्भर करता था। उनका लक्ष्य था ज्ञानीलोक, न कि तर्क सम्मत निर्णय, उनका आदर्श था जन्तुप्रेरित द्रष्टा, न कि यथार्थ तार्किक। भारतीय परम्पराने वेदोंके उद्भवके इस तत्त्वको बड़ी सच्चाईके साथ संभाल कर रखा है। ऋषि सूक्तका वैयक्तिक रूपसे स्वयं निर्माता नहीं था, वह तो द्रष्टा या एक सनातन सत्यका और एक अपौरुषेय ज्ञानका। वेदकी भाषा स्वयं 'श्रुति' है, एक छन्द है जिसका बुद्धि द्वारा निर्माण नहीं हुआ बल्कि जो श्रुतिगोचर हुआ, एक दिव्य वाणी है जो कंपन करती हुई जसीमसे निकल कर उस मनुष्यके अन्तःश्रवणमें पहुँची जिसने पहिलेसे ही अपने आपको अपौरुषेय ज्ञानका पात्र बना रखा था। 'दृष्टि' और 'श्रुति' दर्शन और श्रवण, ये शब्द स्वयं वैदिक मुहावरे हैं, ये और इसके सजातीय शब्द, मन्त्रोंके गूढ़ परिभाषाशास्त्रके अनुसार, स्वतः प्रकाश ज्ञानको और दिव्य जन्तुः श्रवणके विषयोंको हैं। बताते हैं।

स्वतः प्रकाश ज्ञान (इल्लहाम या ईश्वरीय ज्ञान) की वैदिक कल्पनामें किसी चमत्कार या जलौकिकताका निर्देश नहीं मिलता। जिस ऋषिने इन शक्तियोंका उपयोग किया उसने एक उत्तरोत्तर वृद्धिशील आत्मसाधनके द्वारा इन्हें पाया था। ज्ञान स्वयं एक यात्रा और लक्ष्य प्राप्ति थी, एक अन्वेषण और एक विजय थी; स्वतः प्रकाशकी अवस्था केवल अंतमें आई; यह प्रकाश एक अन्तिम विजयका पुर-

स्कार था। वेदमें यात्राका यह अलंकार, सत्यके पथ पर आत्माका प्रयाण, सतत रूपसे मिलता है। उस पथ पर जैसे यह अग्रसर होता है, वैसे ही आरोहण भी करता है; शक्ति और प्रकाशके नवीन क्षेत्र इसकी अभीप्साओंके लिये खुल जाते हैं, यह एक वीरतामय प्रयत्नके द्वारा अपने विस्तृत आध्यात्मिक ऐश्वर्योंको जीत लेता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे ऋग्वेदके बारेमें यह समझा जा सकता है कि यह उस महान् उत्कर्षका लेखा है जिसे मानवीयताने अपनी सामूहिक प्रगतिके किसी एक कालमें विशेष उपयोगोंके द्वारा प्राप्त किया था। अपने गूढ़ अर्थमें भी जैसे कि अपने साधारण अर्थमें, यह कर्मोंकी पुस्तक है; आभ्यन्तर और बाह्य यज्ञकी पुस्तक है; यह है आत्माकी संग्राम और विजयकी सूक्ति जब कि वह विचार और अनुभूतिके उन स्तरोंको खोज कर पा लेता है और उनमें आरोहण करता है जो कि भौतिक अथवा पाशविक मनुष्यके लिये दुर्ग्राप्य है, यह है मनुष्यकी ओरसे उन दिव्य ज्योति, दिव्य शक्ति और दिव्य कृपाओंकी स्तुति जो मर्त्यमें काम आती है, इसलिये इस बातसे यह बहुत दूर है कि यह कोई ऐसा प्रयास हो जिसमें बौद्धिक या कल्पनात्मक विचारोंके परिणाम प्रतिपादित किये गये हों; ना ही यह किसी आदिम धर्मके विधि नियमोंको बतलानेवाली पुस्तक है। केवल अनुभवकी एकरूपतामेंसे प्राप्त हुये ज्ञानकी नैर्गुणिकतामेंसे विचारोंका एक नियत समुदाय निरन्तर दोहराया जाता हुआ उद्गत होता है। और एक नियत प्रतीकमय भाषा उद्गत होती है, जो संभवतः उस आदिम मानवीय बोलीमें इन विचारोंका अनिवार्य रूप थी। क्योंकि यही केवल अपनी श्रुति रूपताके और अपनी रहस्यमय संकेतकी शक्तिके- इन दोनोंके- एकत्रित होनेके द्वारा इस योग्य थी कि इस चीजको अभिव्यक्त कर सके, जिसका व्यक्त करना जातिके साधारण मनके लिये अशक्य था। हम एकसे विचारोंको सूक्त-सूक्तमें दुहराया हुआ पाते हैं, एक ही

नियत परिभाषाओं और बलकारोंके साथ और बहुधा एकसे ही वाक्यांशोंमें और किसी कवितात्मक मौलिकताकी खोजके प्रति या विचारोंकी जपपूर्वता और भाषाची नवीनताके मणके प्रति सर्वथा उदासीनताके साथ । सौन्दर्यमय सौष्ठव जाडम्बर या काष्ठित्यका किसी प्रकारका भी अनुसरण इन रहस्यवादी कवियोंको इसके लिये नहीं उकसाता कि वे उन पवित्र प्रतिष्ठापित रूपोंको बदल दें जो उनके लिये, ज्ञानके सनातन स्रोतोंको दीक्षितोंकी सतत परम्परामें पहुंचाने जाने-वाले एक प्रकारके दिव्य बीजगणितसे बन गये थे ।

वैदिक मंत्र वस्तुतः ही एक पूर्ण छन्दोबद्ध रूप रखते हैं, उनकी पद्धतिमें एक सतत सुक्ष्मता और चातुर्य है, उनमें शैलीकी तथा काव्यमय व्यक्तित्वकी महान् विविधताये हैं; वे जसम्भ, जंगली और जादिम कारीगरोंकी कृति नहीं हैं बल्कि वे एक परम कला तथा सचेतन कलाके सजीव निःश्वास हैं जो कला अपनी रचनाओंको आत्म-दर्शिका अंतः प्रेरणाकी सफल किन्तु सुनियंत्रित गतिमें उत्पन्न करती है । फिर भी ये सब उच्च उपहार जान बूझ कर एक ही अपरिवर्तनीय ढोचेके ढींचेमें और सर्वदा एक ही प्रकारकी सामग्रीसे रचे गये हैं, क्योंकि व्यक्त करनेकी कला ऋषियोंके लिये केवल एक साधन मात्र थी न कि लक्ष्य भूत; उनका मुख्य प्रयोजन अनिरत रूपसे व्यवहारिक था, बल्कि उपयोगिताके दृष्टतम अर्थमें लगभग उपयोगितावादी था ।

वैदिक मंत्र उस ऋषिके लिये जिसने उसकी रचना की थी स्वयं अपने लिये तथा दूसरोंके लिये जाध्यात्मिक प्रगति का साधन था । यह उसकी आत्मामेंसे उठा था, यह उसके मनकी एक शक्ति बन गया था, यह उसके जीवनके आंतरिक इतिहासमें कुछ महत्वपूर्ण क्षणोंमें अपना संकट तकके क्षणमें उसकी आत्मामिव्यक्तिका माध्यम था । यह उसे अपने अंदर देवको अभिव्यक्त करनेमें, अक्षकको पापके अभिव्यंजकको विनष्ट करनेमें सहायक था; पूर्णताकी प्राप्ति के लिये संघर्ष करनेवाले कार्यके हाथमें यह एक शस्त्रका काम देता था; इन्द्रके वज्रके समान यह जाध्यात्मिक मार्गमें

जानेवाले प्रवणभूमिके जाच्छादक पर, रास्तेके सेडिये पर, नदी-किनारेके छुटेरों पर चमकता था ।

वैदिक विचारकी अपरिवर्तनीय नियमितताको जब हम इसकी गंभीरता समृद्धता और सुक्ष्मताके साथ लेते हैं तो इससे कुछ रोचक विचार निकलते हैं, क्योंकि हम युक्ति युक्त रूपसे यह तर्क कर सकते हैं उस कालमें जो कि विचार तथा जाध्यात्मिक अनुभवका जादि काल था, अथवा उस कालमें भी जब कि उनका आरम्भिक उत्कर्ष और विस्तार हो रहा था एक ऐसा नियत रूप और विषय उस कालमें आसानीसे संभव नहीं हो सकता था । इसलिये हम यह अनुमान कर सकते हैं कि हमारी वास्तविक संहिता एक युगकी समाप्तिको सूचित करती है, न कि इसके प्रारम्भको और न ही इसकी क्रमिक अवस्थाओंमेंसे किसी कालको । यह भी संभव है कि इसके प्राचीनतम सूक्तों उनसे भी अधिक प्राचीन ॐ गीतिसय छंदोंके अपेक्षाकृत नवीन विकसित रूप हो अथवा पाठान्तर हों जो और भी पहलेकी मानवीय भाषाके अधिक स्वच्छंद और सुखनम्य रूपोंमें अग्रित थे । अथवा यह भी हो सकता है कि इसकी प्रार्थनाओंका संपूर्ण विशाल समुदाय आर्योंके अधिक विविधतया समृद्ध भूतकालीन वाङ्मयमेंसे वेदव्यासके द्वारा किया गया केवल एक संग्रह हो । प्रचलित विश्वासके अनुसार जो द्वैयायन कृष्ण है, उस महान् परम्परागत मुनि, महान् संग्रहीता (व्यास) के द्वारा आयस युगके आरम्भकी ओर पड़ती हुई संध्याकी तथा उत्तरवर्ती अंधकारकी शताब्दियों की ओर मुंह मोड़ कर बनाया हुआ यह संग्रह गायद दिव्य अंतर्ज्ञानके युगकी, पूर्वजोंकी ज्योतिर्मयी उषाओंकी केवल अन्तिम ही वसूँयत है जो अपने वंशजोंको दी गई है, उस मानव जातिको दी गई है जो पहिलेसे ही आत्मामें निम्नतर स्तरोंकी ओर तथा भौतिक जीवनकी, बुद्धि और तर्कशास्त्रकी युक्तियोंकी अधिक सुगम और सुरक्षित प्राप्तिओं—सुरक्षित गायद केवल प्रतीतिमें ही—की ओर मुख मोड़ रही थी ।

परन्तु ये केवल कल्पनायें और अनुमान ही हैं । निश्चित

ॐ वेदमें स्वयं सतत रूपसे 'प्राचीन' और 'नवीन' ऋषियों (पूर्व...नूतन) का वर्णन आया है, इनमेंसे प्राचीन इतने अधिक पर्याप्त दूर हैं कि उन्हें एक प्रकारके अर्ध देवता, ज्ञानके प्रथम संस्थापक समझना चाहिये ।

तो इतना ही है कि मानव चक्रके नियमके अनुसार जो यह माना जाता है कि वेद उत्तरोत्तर अंधकारमें आते गये और उनका विलोप होता गया, यह बात घटनाओंसे पूरी तौर पर प्रमाणित होती हैं। वेदोंका अंधकारमें आना पहिलेसे प्रारम्भ हो चुका था, उससे बहुत पहिले जबकि भारतीय आध्यात्मिकताका अगला महान् युग वैदिक युग आरम्भ हुआ, जिसने इस पुरातन ज्ञानको सुरक्षित या पुनरुज्जीवित करनेके लिये जितना वह उस समय कर सकता था, उतना संघर्ष किया। और तब कुछ और हो सकना प्रायः असंभव ही था क्योंकि वैदिक रहस्यवादीयोंका सिद्धान्त अनुभूतियाँ पर आश्रित था। जो अनुभूतियाँ साधारण मनुष्यके लिये बड़ी कठिन होती है और वे उन्हें उन शक्तियोंकी सहायतासे प्राप्त होती थी, जो शक्तियाँ हमसेसे बहुतोंके अन्दर केवल प्रारम्भिक अवस्थामें होती हैं और अभी अधूरी विकसित हैं और ये शक्तियाँ यदि कभी हमारे अन्दर सक्रिय होती भी हैं तो मिले जुले रूपमें ही अतएव ये अपने व्यापारमें अनियमित होती हैं। एवं एक बार जब सत्यके अन्वेषणकी प्रथम तीव्रता समाप्त हो चुकी, तो उसके बाद यकावट और शिथिलताका काल बीचमें आना अनिवार्य था, जिस कालमें पुरातन सत्य आंशिक रूपमें लुप्त हो जाने दीये। एक बार लुप्त हो जाने पर फिर वे प्राचीन सूक्तोंके आशयकी छानबीन करके जासानीसे पुनरुज्जीवित नहीं किये जा सकते थे क्योंकि वे सूक्त ऐसी भाषामें प्रथित थे जो जान बूझ कर संदिग्धार्थक रखी गई थी।

एक भाषा जो हमारी समझके बाहर है, वह भी ठीक ठीक समझमें आ सकती है यदि एक बार उसका मूल सूत्र पता लग जाय, पर एक भाषा जो जान बूझ कर संदिग्धार्थक रखी गई है अपने रहस्यको अपेक्षाकृत अधिक दृढ़ता और सफलताके साथ छिपाये रख सकती हैं, क्योंकि यह उन प्रलोभनों एवं निर्देशोंसे भरी रहती है जो भटका देते हैं। इसलिये जब भारतीय मन फिरसे वेदके आशयके अनुसंधानकी ओर मुड़ा तो यह कार्य दुस्तर था और इसमें जो कुछ सफलता मिली वह केवल आंशिक थी। प्रकाशका एक खोत अब भी विद्यमान था वह परस्परगत ज्ञान जो

उनके हाथमें था, जिन्होंने मूल वेदकी कंठस्थ किया था और उसकी व्याख्या करते थे, अथवा जिनके उत्तरदायित्वमें वैदिक कर्मकाण्ड था वे दोनों कार्य प्रारम्भमें एक ही थे, क्योंकि पुराने समय जो पुरोहित होता था वही शिक्षक और दृष्टा भी होता था। परन्तु इस प्रकाशकी स्पष्टता पहिलेसे ही धुंधली हो चुकी थी। बड़ी ख्याति पाये हुये पुरोहित भी जिन शब्दोंका वे बार बार पाठ करते थे उन पवित्र शब्दोंकी शक्ति और उनके अर्थका बहुत ही अधूरा ज्ञान रखते हुये याज्ञिक क्रियाये करते थे। क्योंकि वैदिक पूजाके भौतिक रूप बढ कर जातिरिक्त ज्ञानके ऊपर एक मोटी तहके रूपमें चढ गये थे और वे उसीका गला घोट रहे थे, जिसकी किसी समय वे रक्षा करनेका काम करते थे। वेद पहिले ही गाथाओं और यज्ञविधियोंका एक समुदाय बन चुका था। इसकी शक्ति प्रतीकात्मक विधियोंके पीछेसे ओझल होने लग गई थी; रहस्यमय अंकारोंमें जो प्रकाश था, वह उनसे पृथक् हो चुका था और केवल एक प्रत्यक्ष असंबद्धता और कलारहित सरलताका ऊपरी स्तर ही अवशिष्ट रह गया था।

ब्राह्मण ग्रंथ और उपनिषद् लेखचिन्ह हैं उस एक जबर-दस्त पुनरुज्जीवनके जो मूलवेद तथा कर्मकाण्डको आधार रख कर आरम्भ हुआ और जो आध्यात्मिक आधार तथा अनुभवको एक नवीन रूपमें लेखबद्ध करनेके लिये था। इस पुनरुज्जीवनके ये दो परस्परपूरक रूप थे, एक था कर्मकाण्ड संबंधी विधियोंकी रक्षा और दूसरा वेदकी आत्माका पुनः प्रकाश-पहिलेके द्योतक हैं ब्राह्मणग्रंथ + दूसरेकी उपनिषद्।

ब्राह्मणग्रंथ प्रयत्न करते हैं वैदिक कर्मकाण्डकी सूक्ष्म विधियोंकी, उनकी भौतिक फलोत्पादकताकी बातोंको उनके विविध अंगों, क्रियाओं व उपकरणोंके प्रतीकात्मक अर्थ और प्रयोजनको, यज्ञके लिये जो महत्वपूर्ण मूल मंत्र हैं उनके तात्पर्यको, धुंधले संकेतोंके आशयको तथा पुरातन गाथाओं तथा परिपाटियोंकी स्मृतिको नियत करने और सुरक्षित करनेका। उनमें जानेवाले कथानकोसेसे बहुतसे तो स्पष्ट ही मंत्रोंकी अपेक्षा उत्तरकालके हैं जिनका आविष्कार

+ निश्चय ही ये तथा इस अध्यासमें किये दूसरे विवेचन कुछ मुख्य प्रवृत्तियोंके सारभूत और संक्षिप्त आलोचन ही हैं। उदाहरणतः ब्राह्मण ग्रंथोंमें हम दार्शनिक संदर्भ भी पाते हैं।

(२९६)

वैदिक धर्म : अगस्त १९६२

उन संदर्भोंका स्पष्टीकरण करनेके लिये किया गया है जो जब समझमें नहीं आते थे, दूसरे कथानक संभवतः मूल-गाथा और अंलकारकी उस सामग्रीके जंग हैं जो प्राचीन प्रतीकवादियोंके द्वारा प्रयुक्त की गई थी जयवा उन वास्तविक ऐतिहासिक परिस्थितियोंकी स्मृतियाँ हैं जिनके बीचमें सूक्तोंका निर्माण हुआ था।

मौखिक रूपसे चली जा रही परम्परा सदा एक ऐसा प्रकाश होता है जो वस्तुको धुंधला दिखाता है, जब तक नया प्रतीकवाद जो उस प्राचीन प्रतीकवाद पर कार्य करता है, जो कि जाधा लुप्त हो चुका है, तो संभवतः वह उसके ऊपर उग कर उसे अधिक आच्छादित ही कर देता है, अपेक्षा इसके कि वह उसे प्रकाशमें लाये। इसलिये ब्राह्मण-ग्रंथ यद्यपि बहुतसे मनोरंजक संकेतोंसे भरे हुये हैं, फिर भी हमारे अनुसंधानमें वे हमें बहुतसी थोड़ी सहायता पहुंचाते हैं, न ही वे पृथक् मूलमंत्रोंके अर्थके लिये एक सुरक्षित पथ-प्रदर्शक होते हैं जब कि वे मंत्रोंकी एक यथा-तथ्य और शाब्दिक व्याख्या करनेका प्रयत्न करते हैं।

उपनिषदोंके ऋषियोंने एक दूसरी प्रणालीका अनुसरण किया। उन्होंने विलुप्त हुये या क्षीण होते हुये ज्ञानको ध्यान-समाधि तथा आध्यात्मिक अनुभूतिके द्वारा पुनरुज्जीवित करनेका यत्न किया और उन्होंने प्राचीन मंत्रोंके मूल ग्रंथ (मूलवेद) को अपने निजी अन्तर्ज्ञान तथा अनुभवोंके लिये आधार या प्रमाणरूपमें प्रयुक्त किया। जयवा यूँ कहें कि वेदवचन उनके विचार और दर्शनके लिये एक बीज था, जिससे कि उन्होंने पुरातन सत्योंको नवीन रूपमें पुनरुज्जीवित किया।

जो कुछ उन्होंने पाया उसे उन्होंने ऐसी दूसरी भाषाओंमें व्यक्त कर दिया जो उस युगके लिये जिसमें वे रहते थे अपेक्षाकृत अधिक समझमें आने योग्य थी। एक अर्थमें उनका वेद मंत्रोंकी हाथ लेना बिल्कुल निःस्वार्थ नहीं था, इसमें विद्वान् ऋषि की वह सतर्क सूक्ष्मदर्शनी इच्छा नियंत्रण नहीं कर रही थी जिससे कि वे अवश्य शब्दोंके यथार्थ भाव तक और अपने वास्तविक रूपमें वाक्योंके ठीक-ठीक विचार तक पहुंचें। वे शाब्दिक सत्यकी अपेक्षा एक उच्चतर सत्यके अन्वेषक थे और शब्दोंका प्रयोग केवल उस प्रका-

शब्दके संकेतिक रूपमें करते थे जिसकी ओर वे जानेका प्रयत्न कर रहे थे। वे शब्दोंके उनकी व्युत्पत्तिसे बने अर्थोंको या तो जानते ही नहीं थे या उसकी अपेक्षा कर देते थे और बहुधा वे शब्दोंकी घटक अक्षर ध्वनियोंको लेकर प्रतीकात्म्य व्याख्या करनेकी सरणिका ही प्रयोग करते थे जिसमें उन्हें समझना बड़ा कठिन पड़ जाता है।

इस कारण उपनिषदें जहां जमूल्य वस्तु हैं, उस प्रकाशके लिये जो वे प्रधान विचारों पर तथा प्राचीन ऋषियोंकी आध्यात्मिक पद्धति पर डालती है, वहां वे जिन वेदमंत्रोंको उद्धृत करती हैं उनके यथार्थ आशयका निश्चय करनेमें हमारे लिये उतनी ही कम सहायक हैं जितने कि ब्राह्मण ग्रंथ। उनका जसकी कार्य वेदांतकी स्थापना करना था, न कि वेदकी व्याख्या करना।

इस महान् आन्दोलनका फल हुआ। विचार और आध्यात्मिकताकी एक नवीन तथा अपेक्षाकृत अधिक स्थिर शक्ति-शाली स्थापना वेदकी वेदांतमें परिसमाधि। और इसके अंदर दो ऐसी प्रबल प्रवृत्तियां विद्यमान थी जिन्होंने पुरातन वैदिक विचार तथा संस्कृतिकी संहतिको भंग करनेकी दिशामें कार्य किया। प्रथम यह कि इसकी प्रवृत्ति बाह्य-कर्मकाण्डको अधिकाधिक गौण करनेकी मंत्र और यज्ञकी भौतिक उपयोगिता कम करके उसके स्थान पर अधिक विशुद्ध रूपसे आध्यात्मिक लक्ष्य और अभिप्रायको देनेकी थी। प्राचीन रहस्यवादियोंने बाह्य और आभ्यन्तर, भौतिक और आत्मिक जीवनमें जो सन्तुलन, जो समन्वय कर रखा था, उसे स्थानच्युत और अस्त-व्यस्त कर दिया गया। एक नवीन संतुलन, एक नवीन समन्वय स्थापित किया गया जो अन्ततोगत्वा सन्यास और त्यागकी ओर झुक गया और उसने अपने आपको तब तक कायम रखा, जब तक कि यह समय जाने पर बौद्धधर्ममें आई हुई इसकी अपनी ही प्रवृत्तियोंकी जातिके द्वारा स्थानच्युत और अस्त-व्यस्त नहीं कर दिया गया।

यज्ञ, प्रतीकात्मक कर्मकाण्ड, अधिकाधिक निरर्थकसा अवशेष— यहाँ तक कि भारभूत हो गया तो भी जैसा कि प्रायः हुआ करता है, यंत्रवत् और निष्फल हो जानेका परिणाम यह हुआ कि उनकी प्रत्येक बाह्यसे बाह्य वस्तुकी भी महत्ताको बड़ा चढ़ा कर कहा जाने लगा और उनकी

सूक्ष्म विधियोंको राष्ट्रमनके उस भाग द्वारा जो अब तक उनसे चिपटा हुआ था, बिना युक्तिके ही बलपूर्वक थोपा जाने लगा। वेद और वेदान्तके बीच एक तीव्र व्यावहारिक भेद अस्तित्वमें आया, जो क्रियामें था यद्यपि पूर्वतः सिद्धान्त रूपसे कभी भी स्वीकार नहीं किया गया, जिसे इस सूत्रमें व्यक्त किया जा सकता है, 'वेद पुरोहितोंके लिये, वेदान्त संतोंके लिये।'

वैदान्तिक हलचलकी दूसरी प्रवृत्ति थी अपने आपको प्रतीकात्मक भाषाके भारले क्रमशः मुक्त करना, अपने ऊपरसे उपचित गाथाओं और कवितारामक अलंकारोंके पर्देको हटाना जिसमें कि रहस्यवादियोंने अपने विचारको छिपा रखा था और उसके स्थान पर एक अधिक स्पष्ट प्रतिपादनको और अपेक्षया अधिक दार्शनिक भाषाको रखना। इस प्रवृत्तिके पूर्ण विकासने न केवल वैदिक कर्म-काण्डकी, बल्कि मूल वेदकी भी उपयोगिताको अप्रचलित कर दिया। उपनिषदों जिनकी भाषा बहुत ही स्पष्ट और सीधी-सादी थी सर्वोच्च भारतीय विचारका मुख्य स्रोत हो गई और उन्होंने वसिष्ठ और विश्वामित्रकी अन्तः श्रुत ऋचाओंका स्थान ले लिया। *

वेदोंकी शिक्षाके अनिवार्य आधारके रूपमें क्रमशः कम और कम करते जानेके कारण अब वे वैसे उत्साह और बुद्धि चातुर्यके साथ पढ़े जाने बंद हो गये थे, उनकी प्रतीकमय भाषाने, प्रयोगमें न आनेसे, नयी संततिके आगे अपने आंतरिक आशयके अवशेषको भी खो दिया, जिस संततिकी सारी ही विचारप्रणाली वैदिक पूर्वजोंकी प्रणालीसे भिन्न थी। दिव्य अन्तर्ज्ञानके युग धीत रहे थे और स्थान पर तर्कके युगकी प्रथम उषाका आतिर्भाव हो रहा था।

बौद्धधर्मने इस क्रान्तिको पूर्ण किया और प्राचीन युगकी बाह्य परिपाटियोंमेंसे केवल कुछ अत्याहत जाडम्बर और कुछ यंत्रवत् चलती हुई रुदिया ही अवशिष्ट रह गई। इसने वैदिक यज्ञको लुप्त कर देना चाहा और साहित्यिक भाषाके

स्थान पर प्रचलित लोकभाषाको प्रयोगमें लानेका यत्न किया। और यद्यपि इसके कार्यकी पूर्णता, पौराणिक सम्प्रदाओंमें हिन्दुधर्मके पुनरुज्जीवनके कारण, कई शताब्दियों तक रुकी रही, तो भी वेदने स्वयं इस अवकाशसे न के बराबर ही लाभ उठाया। नये धर्मके प्रचारका विरोध करनेके लिये यह आवश्यक था कि पूज्य किन्तु दुर्बोध मूल वेदके स्थानपर ऐसी धर्म-पुस्तकें लाई जावें जो अपेक्षाकृत अधिक अर्वाचीन संस्कृतमें सरल रूपमें लिखी गई हों। इस प्रकार देशके सर्वसाधारण लोगोंके लिये पुराणोंने वेदोंकी एक तरफ धकेल दिया और नवीन धार्मिक पूजा-पाठके उपार्योंने पुरातन विधियोंका स्थान ले लिया। जैसे वेद ऋषियोंके हाथसे निकल कर पण्डितोंके हाथमें जाना शुरू हो गया और उस रक्षणमें इसने अपने अर्थोंके अन्तिम अंग-छेदनको और अपनी सच्ची शान और पवित्रताकी अन्तिम हानिको सहा।

यह बात नहीं कि वेदोंका पण्डितोंके हाथमें जाना और भारतीय पण्डितका वेदमंत्रोंके साथ व्यवहार जो ईसाके पूर्वकी शताब्दियोंसे प्रारम्भ हो गया था, सर्वथा एक घाटेका ही लेखा हो। इसकी अपेक्षा ठीक तो यह है कि पण्डितोंके सतर्क अध्यवसाय तथा उनकी प्राचीनताको रक्षित रखने और नवीनतामें अप्रौतिकी परिपाटीके इस ऋणी हैं कि उन्होंने वेदोंकी सुरक्षाकी, बावजूद इसके कि इसका रहस्य लुप्त हो चुका था और वेदमंत्र स्वयं क्रियात्मक रूपमें एक सजीव धर्मशास्त्र समझे जाने बंद हो गये थे। और साथ ही लुप्त रहस्यके पुनरुज्जीवनके लिये भी पाण्डित्यपूर्ण कट्टरताके ये दो सहस्र वर्ष हमारे लिये कुछ जमूल्य सहायतायें छोड़ गये हैं अर्थात् मूल वेदोंके संहिता आदि पाठ जिनके ठीक ठीक स्वरचिन्ह बड़ी सतर्कताके साथ निश्चित किये हुये हैं, यास्कका महत्त्वपूर्ण कोष और सायणका यह विस्तृत भाष्य जो अनेक और प्रायः चौका देनेवाली अपूर्णताओंके होते हुये भी अन्वेषक विद्वान्के लिये गंभीर वैदिक शिक्षाके निर्माणकी ओर एक अनिवार्य पहला कदम है।

❁ यहां फिर इससे मुख्य प्रवृत्ति ही सूचित होती है और इसे कुछ शतोंकी अपेक्षा है। वेदोंका प्रमाण रूपसे भी उद्धृत किया गया है पर सर्वांग रूपसे फटें तो उपनिषद ही हैं जो कि ज्ञानकी पुस्तक होती हैं, वेद अपेक्षाकृत कर्म-काण्डकी पुस्तक है।

वैदिक साहित्य

श्री. अरविन्द

★

राष्ट्रके गौरवमय यौवन-कालमें जब कि एक जगाध आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि कार्य कर रही थी, एक सूक्ष्म अंतर्ज्ञानात्मक दृष्टि और एक महान् रूपमें निर्धारित, गंभीर एवं विशद बौद्धिक और नैतिक विचार शृंखला तथा साहित्यिक कार्य-धारा एवं सृजन प्रवृत्ति क्रियाशील थी जिन्होंने उसकी अनुपम संस्कृति एवं सभ्यताकी योजना खोज निकाली एवं निर्धारित की और इसकी स्थायी इमारत खड़ी की,—ऐसे युगमें हमें भारतका प्राचीन मानस उसकी प्रतिभाकी चार परमोच्च कृतियों, वेद, उपनिषदों और दो वृहत महाकाव्यों के द्वारा प्रस्तुत मिलता है, और इसमेंसे प्रत्येक एक ऐसी कोटि एवं शैलीकी तथा ऐसी भावनासे सम्पन्न रचना है जिसकी बराबरी करनेवाली रचना किसी अन्य साहित्यमें आसानीसे नहीं मिल सकती। इनमेंसे पहली दो उसके आध्यात्मिक और धार्मिक स्वरूपका प्रत्यक्ष आधार हैं, शेष दो उसके जीवनके महत्तम युगकी, इसे अनुप्राणित करनेवाले विचारों एवं परिचालित करनेवाले आदर्शों तथा उन प्रतीकोंकी विशाल सर्जनक्षम व्याख्या हैं जिनके रूपमें उसने मनुष्य, प्रकृति और परमेश्वरको तथा जगत्की शक्तियोंको देखा था।

वेदने हमें इन चीजोंके प्रथम प्रतिरूप और आकार प्रदान किए जैसे कि वे रूपात्मक आध्यात्मिक अंतर्ज्ञान तथा मनो-वैज्ञानिक और धार्मिक अनुभवके द्वारा देखे और गठे गए थे ? उपनिषदों आकार, प्रतीक और रूपको निरंतर भेद कर तथा इनके परे जा कर पर इनका पूर्ण रूपसे त्याग किए बिना—क्यों कि ये चीजें एक सहचारी तत्त्व या गौण वस्तु के रूपमें सदा ही आ घुसती हैं,—एक आद्वितीय कोटिके काव्यमें आत्मा, परमात्मा और मनुष्य तथा जगत् और इसके मूलतत्त्वों एवं इसकी शक्तियोंके—इन (मूलतत्त्वों और शक्तियों) के अत्यंत समरभूत, गंभीरतम, अंतरंगतम एवं विस्तृततम वास्तविक रूपोंके—चरम परम सत्योंको प्रकाशित करती हैं,— ये वास्तविक रूप परमोच्च रहस्य और विशद आकार हैं जिन्हें एक ऐसी दुर्निवार एवं निर्बाध

अनुभूतिके रूपमें स्पष्टतया देखा गया है जो अंतर्ज्ञानात्मक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिके द्वारा विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि तक पहुंच चुकी है।

और उपनिषदोंके बाद हम उस बुद्धि एवं जीवनकी तथा आदर्शभूत नैतिक, सौंदर्यात्मक एवं चैत्य एवं भाविक ऐंद्रिय तथा भौतिक ज्ञान, विचार, दृष्टि और अनुभवकी ओजस्वी और सुन्दर प्रगतियोंको देखते हैं जिनका कि हमारे महाकाव्य प्राचीन अभिलेख हैं और जिन्हें शेष सारा साहित्य अविविच्छन्न रूपसे विस्तारित करता है; परंतु आधार बराबर ही वही रहता है और जो भी नए एवं प्रायः व्यापकतर प्रतिरूप तथा अर्थपूर्ण आकार पुरानोंके स्थानों पर आते हैं या सम्पूर्ण समष्टिमें कुछ वृद्धि, संशोधन और परिवर्तन करनेके लिए हस्तक्षेप करते हैं वे अपने मूल गठन और प्रकृतिमें आदि दृष्टि और प्रथम आध्यात्मिक अनुभवके रूपांतर और विस्तार ही होते हैं, वे ऐसे स्वतंत्र कदापि नहीं होते जो उससे संबंध ही न रखते हों। साहित्यिक सृजनमें, महान् परिवर्तनोंके होते हुए भी, भारतीय मनकी दृढ़ लगन एवं अविविच्छन्न परंपरा कायम रही है जो वैसी ही सुसंगत है जैसी हम चित्रकला और मूर्तिकलामें देखते हैं।

वेद उस आदिकालीन और अंतर्ज्ञानात्मक और प्रतीकात्मक मनोवृत्तिकी रचना है जो मनुष्यके परवर्ती मनके लिए एक सर्वथा अपरिचित वस्तु बन गयी है क्योंकि वह प्रबल रूपमें बौद्धिक बन गया है तथा एक ओर तो तर्क-शील विचार तथा अमूर्त परिकल्पनाके द्वारा और दूसरी ओर जीवन और जड़ तथ्योंको द्वारा परिचालित होता है, जिन तथ्योंको उसी रूपमें स्वीकार कर लिखा जाता है जैसे कि वे इन्द्रियों तथा प्रत्यक्षवादी बुद्धिके सम्मुख उपस्थित होते हैं और उनमें किसी भी दिव्य या गुह्य अर्थकी खोज नहीं की जाती, और क्योंकि वह कल्पनाको सत्यके द्वारोंको खोलनेवाली कुंजी नहीं बरंच सौंदर्यात्मक मौजकी एक क्रीडा मानकर उसमें संलग्न रहता है और केवल उसीके

सुझावों पर विश्वास करता है जब कि वे तार्किक युक्ति या स्थूल अनुभूतिके द्वारा पुष्ट होते हैं, और चूंकि वह उन्ही जन्तुःस्फुरणोंसे अभिज्ञ है जिन्हें सावधानताके साथ बौद्धिक रूप दे दिया गया है और सभी स्फुरणोंका अधिकान्तमें विरोध ही करता है।

जत एव इसमें कुछ आश्चर्य नहीं कि वेद अपने भाषाके अत्यंत बाहरी आवरणको छोड़कर हमारे मनके लिए दुर्बोध हो गया हो; और वह बाह्य आवरण भी एक प्राचीन तथा अच्छी तरह समझमें न जानेवाली शैलीकी बाधाके कारण अत्यंत अपूर्ण रूपमें ही बोधगम्य हो, और कि उसकी अत्यंत अनुपयुक्त व्याख्याएं की गयी हों जो मानव जातिकी तरुण और तेजस्वी मनकी इस महत् कृतिको घटा कर एक दूषित और कुरूप लेख बना डालती हैं, एक आदिम कल्पनाकी मूर्खता पूर्ण बातोंका एक ऐसा जसंगत मिश्रण बना देती हैं जिसके कारण वह चीज भी जटिल हो उठती है जो वैसे ठस प्रकृतिवादी धर्मका बिल्कुल सीधा-सादा स्पष्ट और सर्वसामान्य अभिलेख होती जो वर्षों प्राण प्रधान मनकी स्थूल और जडवादीय कामनाओंको ही प्रतिबिंबित करता था और उन्हींकी सेवा कर सकता था। भारतीय पुरोहितों और पण्डितोंकी परवर्ती पंडित्य पूर्ण और कर्मकाण्डीय भावनाके लिए वेद गाथाविज्ञान और याज्ञिक क्रिया-कलापोंकी पुस्तक मात्र रह गया, इससे अच्छी कोई चीज नहीं, यूरोपीय विद्वानोंने वेदमें केवल अपनी बौद्धिक रुचिके विषयों जथात् इतिहास, गाथाओं, और आदिम जातिके प्रचलित धार्मिक विचारोंकी ही खोज की और इस प्रकार वेदके साथ और भी बड़ा अन्याय किया गया है और एक सर्वथा बाह्य व्याख्या पर बल देकर उसे उसके आध्यात्मिक आशय और उसकी काव्यात्मक महत्ता एवं सुन्दरतासे और भी अधिक वंचित कर दिया गया है।

परंतु स्वयं वैदिक ऋषियों या उनके बाद जानेवाले इन महान् द्रष्टाओं मनीषियोंके लिए वेद यह चीज नहीं था, जिन्होंने कि उनकी अर्थगम्य और प्रकाश पूर्ण जन्तुःस्फुरणोंसे विचार और वाणीकी अपनी जद्भूत रचनाएं विकसित की जो एक अनुभूतपूर्व आध्यात्मिक साक्षात्कार और अनुभव पर प्रतिष्ठित थी। इन प्राचीन द्रष्टाओंके लिए वेद

वह शब्द-ब्रह्म था जिसने सत्यको आविष्कृत किया और जीवनके रहस्यमय अर्थोंको रूपक एवं प्रतीकका परिधान पहनाया। वह शब्दकी अंतर्निहित अक्तियोंका, उसकी रहस्यमय सत्योद्भासी और संवर्धनशील क्षमताका दिव्य आविष्कार और प्राकट्य था, पर वह शब्द नैयायिक और तार्किक या सौंदर्यात्मक बुद्धिका शब्द नहीं था, बल्कि एक बोधि-जन्म और अंतः प्रेरित छंदोबद्ध वचन 'मंत्र' था। उसमें रूपक और आख्यानको प्रयोग स्वच्छंदताके साथ किया गया था, पर वह कल्पनाकी उड़ानके रूपमें नहीं बल्कि उन चीजोंके जोवत दृष्टांतों और प्रतीकोंके रूपमें किया गया था जो उनका वर्णन करनेवालोंके लिए अत्यंत वास्तविक थी तथा जो और किसी प्रकारसे वाणीमें अपना आभ्यंतरिक एवं स्वभाविक रूप नहीं प्राप्त कर सकती थी और स्वयं कल्पना उनसे अधिक महान् सद्स्तुओंको पुरोहित थी जो जीवनके बाह्य सुझावों तथा भौतिक सत्तासे आवद्ध जाल और मनके संमुख जाती हैं और इन्हें वशमें किए रहती हैं।

पवित्रात्मा कविके संबंधमें उनकी धारणा यह थी कि वह एक ऐसी मनीषी होता है जिसे अपने मनमें किसी उच्चतम प्रकाश तथा इसके विचारात्मक और शब्दात्मक रूपोंका साक्षात्कार हुआ होता है, वह सत्यका द्रष्टा और श्रोता होता है, 'कवयः सत्यश्रुतयः।' निश्चय ही वैदिक मंत्रोंके कवि अपने कार्यको उस रूपमें नहीं देखते थे जिस रूपमें आधुनिक विद्वानोंने उसका निरूपण किया है। वे अपनेको एक बलिष्ठ और बर्बर जातिके लिए एक प्रकारके तंत्र-मंत्र एवं जादू-टोनेका निर्माण करनेवाले नहीं, बल्कि 'ऋषि' और 'धीर' + समझते थे। इन गायकोंका विश्वास था कि इन्हें एक उच्च रहस्यमय और गुप्त सत्य प्राप्त है, इनका दावा था कि ये एक ऐसी वाणीको धारण करते हैं जो दिव्य ज्ञानको स्वीकार्य है, और अपने वचनोंके बारेमें ये स्पष्ट रूपसे ऐसी बात कहते भी हैं कि वे रहस्यमय शब्द हैं जो अपना सम्पूर्ण तात्पर्य केवल ऋषिके समक्ष ही प्रकाशित करते हैं, 'कवये निवचनानि निष्यावचांसि।' और जो द्रष्टा इनके बाद जाये उनके लिए वेद ज्ञानका, और यहाँतक कि एक परम ज्ञानका ग्रंथ था, एक ईश्वरीय ज्ञानका, एक सनातन और निर्व्यक्तिक सत्यका, जैसा कि

+ धीर = धी+र, जथात् धी या विचारमें रत रहनेवाले। अनु०

वह जन्तुःप्रेरित और भगवत्तुल्य मनीषियों (धोरो) के जंतरीय अनुभवमें देखा और सुना गया था, महान् प्रकाश था ।

यज्ञकी जिन छोटीसे छोटी क्रियाओंके विषयमें मंत्र लिखे गए थे उनका प्रयोजन अर्थकी एक प्रतीकार्थक तथा मनोवैज्ञानिक शक्तिको बहन करना था, जैसा कि प्राचीन ब्राह्मण ग्रंथोंके लेखकोंको मलीमांति विदित था । पवित्र मंत्रोंको, जिनमेंसे प्रत्येक अपने-आपमें दिव्य अर्थसे पूर्ण समझा जाता था, उपनिषद्के विचारक अपने जन्वेष्णीय सत्यके गंभीर और अर्थगर्भित बीजरूप शब्द मानते थे और अपने उदात्त उद्गारोंके लिए वे जो सर्वोच्च प्रमाण दे सकते थे वह था अपने पूर्णगामी ऋषियोंके ग्रंथसे उद्धृत कोई समर्थक वचन जिसके साथ वे 'तदेवा ऋचाम्युक्ता' अर्थात् 'यह वह वाणी है जो ऋग्वेदने उच्चारित की थी।' इस सूत्रका प्रयोग करते थे। पश्चिमी विद्वान् यह कल्पना करना पसंद करते हैं कि वैदिक ऋषियोंके उत्तराधिकारियोंने मूल की है, कुछेक बादके मंत्रोंको छोड़कर अन्य पुराने मंत्रोंमें उन्होंने एक मिथ्या और जसत् जय भर दिया है और केवल युगोंके द्वारा ही नहीं बल्कि बौद्धिकता में रंगी 'मनोवृत्तिकी अनेक खाइयों और विभाजक समुद्रोंके द्वारा भी उन ऋषियोंसे पृथक् हुए हुए वे स्वयं उनसे अनंतगुना उत्तम ज्ञान रखते हैं। परंतु केवल साधारण बुद्धिसे भी हमें यह पता लग जाना चाहिए कि जो लोग दोनों तरहसे मूल कवियोंके इतना अधिक निकट थे उनके लिए कम-से कम इस विषयका सारभूत सत्य अधिकृत करनेकी अधिक अच्छी संभावना थी और साधारण बुद्धि ही, कम-से कम, इस प्रबल संभावनाका संकेत देती है कि वेद वस्तुतः वही चीज था जो कुछ होनेका वह दावा करता है, अर्थात् वह एक गुह्य ज्ञानकी खोज था, भारतीय मनके उस जनवरत प्रयत्नका, — भारतीय मन अपने इस प्रयत्न के प्रति सदैव सच्चा रहा है — प्रथम रूपसे था जो उसने स्थूल जगत्की प्रतीतियोंसे परे देखने और अपने जांतरिक अनुभवोंके द्वारा उस एकमेव देवताओं, उसकी शक्तियों और स्वयंभू-सत्ताको देखनेके लिए किया था जिसके विषयमें ज्ञानी लोग नाना प्रकारसे चर्चा करते हैं — यह वह प्रसिद्ध पदावलि है जिसमें वेद अपना केन्द्रिय रहस्य प्रकट करता

है, 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति ।'

यदि हम वेदको कोई भी स्थल लेकर इसके अपने ही पदों और रूपकोंके अनुसार सीधे-सरल रूपमें इसकी व्याख्या करें तो इसका असली स्वरूप बहुत अच्छी तरह समझ में आ सकता है। एक प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् अपनी श्रेष्ठ बुद्धिके ऊंचे जासनसे उन मूल लोगोंकी जिन्हें वेदमें उदात्तता दिखाई देती है भर्त्सना करता हुआ हमें बताता है कि यह बालिश, मूर्खतापूर्ण, यहां तक कि बोभत्स कल्पनाओंसे भरा हुआ है, एक झिष्ट, हीन और तुच्छ रचना है और मानव प्रकृतिके स्वार्थ एवं लौकिकतावाले निम्न स्तरका प्रतिनिधित्व करता है और केवल कहीं कहीं कुछेक ऐसी विरली भावनाएं हैं जो अंतरात्मनकी गहराइयोंसे जाती हैं। वेदको ऐसा रूप दिया जा सकता है यदि हम ऋषियोंके वचनोंमें अपनी मानसिक कल्पनाएं भर दें, परंतु यदि हम उन्हें उसी रूपमें पढ़ें जैसे कि वे हैं और हमारी समझमें उन प्राचीन वर्तकोंको जैसी बातें कहनी और सोचनी चाहिए थीं वैसी बातोंमें उनका इस प्रकार कोई मिथ्या रूपांतर न करें तो इसके स्थान पर हमें वहां एक पवित्र काव्यके दर्शन होंगे जो अपने शब्दों और रूपकोंमें उदात्त और ओजस्वी हैं यद्यपि भाषा और कल्पना उनसे भिन्न प्रकारकी हैं जिन्हें हम आज अधिक पसंद करते और सराहते हैं, और साथ ही, अपने मनोवैज्ञानिक अनुभवमें गंभीर और सूक्ष्म है तथा अंतर्दर्शन और वाणीकी द्रवित आत्माद्वारा स्पंदित है। स्वयं वेदकी कुछ वाणी सुन लीजिये।

भूमिकाओं पर भूमिकाएं उदित होती हैं, जावरण पर जावरण × ज्ञानकी ओर जाग उठता है। मांकी गोदमें वह सब कुछ पूर्ण रूपसे देखता है। उन्होंने उसे पुकारा है, विशाल ज्ञान लाभ करके वे विनिर्माण भावसे शक्तिकी रक्षा करते हैं, उन्होंने दृढ़ पुरीमें प्रवेश पा लिया है। इस भूतल पर उत्पन्न हुए मनुष्य शुभ्रवर्णा माता (शिवरा) के पुत्रकी ज्योतिर्मय (शक्ति) को बढ़ाते हैं, वह अपनी ग्रीवामें स्वर्ण धारण किए हैं, उसकी वाक्शक्ति विशाल है, वह मानो इस मधुके वह अपनी ग्रीवामें स्वर्ण धारण किए हैं, उसकी वाक्शक्ति विशाल है, वह मानो इस मधुके (इसकी शक्ति के) द्वारा भूमाकी कामना करनेवाला है। वह प्रिय और काम्य दुग्धकी तरह है, वह एक जकेली वस्तु है और दोके

× अथवा, 'जावरणका जावरण।'

वैदिक साहित्य

(३०१)

साथ विद्यमान है जो (परस्पर) सहचर है, वह एक ऐसे तापके समान है जो भूमाका उदर है, वह अजेय है और जनेकोंका विजेता है। अपनी क्रीडा कर, जो रश्मि, और प्रकट हो। ० (ऋग्वेद ५, १९) या फिर जगले मूक में,—

तुझ बाक्तिमय (देव) की वे (उवाकाएं) जो जलक, प्रवृद्ध और बलशाली हैं, (तुझसे) भिन्न नियमवालेके द्वेष और कुटिलताका संग छोड़ देती हैं। हे अग्ने ! हम तुझे पुरोहित, तथा अपने बलको क्रियान्वित करनेके साधन के रूपमें वरते हैं और यज्ञोंमें तेरे लिए प्रसन्नताकारक हवि काते हुए तुझे (अपनी) वाणीसे पुकारते हैं— हे पूर्ण कमोंके देवता ! (हे सुक्रतु) कृपा कर कि हम आनंद और सत्यके भागी हों, किरणोंके साथ आनंद मनायें, वीरोंके साथ आनंद मनायें।

और अंतमें हम इसके बादके, तीसरे सूक्तका एक बड़ा भाग लें जिसमें भावका प्रकाशन यज्ञके साधारण प्रतीकोंमें किया गया है,—

‘ मनुके रूपमें हम तुझे तेरे स्थान पर स्थापित करते हैं, मनुके रूपमें तुझे प्रदीप्त करते हैं ’ हे अग्ने ! हे अंगिरः ! मनुके रूपमें तू देवोंकी कामना करनेवालोंके लिए देवोंका यजन कर। हे अग्ने ! सुप्रसन्न होकर तू मनुष्यमें प्रदीप्त होता है और सुवाएं निरंतर तेरी ओर जाती हैं— तुझे सष देवोंने, (तुझ हीमें) एक मात्र आनंद लेते हुए, अपना दूत बनाया और तेरी सेवा-सपर्या करते हुए, हे क्रांत-दर्शिन (कवे), (मनुष्य) यज्ञोंमें देवताकी स्तुति करते हैं। देवोंके यजनके द्वारा मर्त्य दिव्य आग्निकी स्तुति करे। प्रदीप्त होकर, जाज्वल्यमान हो, हे दीप्तिमान् (शुक्र) ! सत्यके आसनपर आसीन हो, शक्तिके आसन पर विराजमान हो।

इसके रूपकोंकी हम चाहे जो भी व्याख्या करना पसंद करें पर यह एक गुह्य और प्रतीकात्मक काव्य है और यही है वास्तविक वेद।

● शब्दशः, हमारी ओर अभिमुख हो।

* इन स्थानोंका अनुवादमें ने मूलके इतने निकट, शाब्दिक रूपमें किया है जितना कि जंगेजी भाषामें करना संभव है। पाठक मूलसे मिलाकर स्वयं निर्णय करें कि जाया इन मंत्रोंका आशय यही है या नहीं।

इन विशिष्ट मंत्रोंसे वैदिक काव्यका जो स्वरूप हमारे सामने प्रकट होता है उससे हैरान या परेशान होनेकी कोई जरूरत नहीं जब कि हम यह देखते हैं,— और यह बात एशियाई साहित्यके तुलनात्मक अध्ययनसे स्पष्ट हो जायगी, कि यद्यपि वैदिक काव्य ईश्वरीयवाणी-विषयक अपने सिद्धांत और निरूपण, रूपकोंकी अपनी अनोखी प्रणाली तथा अपने विचार और प्रतीकोंमें वर्णित अपने अनुभवकी जटिलताके कारण औरोंसे भिन्न है, फिर भी वास्तवमें यह आध्यात्मिक अनुभवकी काव्यमय अभिव्यक्तिके लिये प्रतीकारमक या आलंकारिक कल्पना सृष्टिके एक रूपका आरंभ है जो बादके भारतीय ग्रंथोंमें, तंत्रों और पुराणोंके रूपकों और वैष्णव कवियोंके जलंकारोंमें, यहां तक कि हम रवीन्द्रनाथ ठाकुर के आधुनिक काव्यके कुछ अंशको भी यहां जोड़ सकते हैं, पुनः पुनः प्रकट होता है और जिससे मिलती-जुलती चेष्टाएं कुछेक चीनी कवियोंमें तथा सूफियोंमें भी पायी जाती हैं। कविको एक आध्यात्मिक और आंतरात्मिक ज्ञान एवं अनुभवकी अभिव्यक्ति करनी होती है और यह कार्य वह, पूर्णतया या मुख्य रूपसे, दार्शनिक विचारककी अधिक गूढ़ भाषामें नहीं कर सकता, क्योंकि उसे केवल इसके कोरे विचारको ही नहीं बल्कि इसके साक्षात् जीवन और अत्यंत घनिष्ट स्पर्शोंको भी वयासंभव स्पष्ट रूपमें व्यक्त करना होता है।

उसे किसी-न-किसी प्रकार अपने अंदरके एक संपूर्ण जगत्को तथा अपने चारों ओरके जगत्के सर्वथा आंतरिक और आध्यात्मिक अर्थों और साथ ही, यह भी खूब संभव है कि, चेतनाके जिस स्तरसे हारे सामान्य मन परिचित हैं उससे भिन्न स्तरोंके देवताओं, शक्तियों, अंतर्दृशनों और अनुभवोंको प्रकाशित करना होता है। वह अपने सामान्य और बाह्य जीवन तथा मानवजातिके जीवन और दृश्यमान प्रकृतिसे लिए हुए रूपकोंको प्रयुक्त करता है या उन्हींको लेकर चलता है, और यद्यपि वे वस्तुतः आध्यात्मिक और आंतरात्मिक विचार एवं अनुभवको अपने आप तो प्रकट नहीं करते तथापि वह उन्हें इसे व्यंजनाके द्वारा या आलं-

कारिक रूपमें प्रकट करनेके लिये बाध्य करता है ।

वह अपनी अंतर्दृष्टि या कल्पनाके अनुसार रूपकोंमेंकी अपनी संकेतमालाका स्वतंत्रतापूर्वक चुनाव करता हुआ उन्हें अपनाता है और उन्हें एक अन्य अर्थके द्योतक साधनोंके रूपमें परिणत कर देता है और साथ ही प्रकृति और जीवनमें, जिनके साथ कि वे संबंध रखते हैं, एक प्रत्यक्ष आध्यात्मिक अर्थ ढाल देता है, आंतरिक वस्तुओंपर बाह्य अलंकारोंका प्रयोग करता है और उनके प्रसुप्त एवं अंतरीय आध्यात्मिक या चैत्य अर्थको जीवनके बाह्य रूपकों और घटनाओंके रूपमें व्यक्त कर देता है । जधवा एक बाह्य रूपको ही जो आंतरिक अनुभवके निकटतम एवं उसकी एक स्थूल प्रतिरूपिणी होता है, सर्वत्र अपनाया जाता है और उसका प्रयोग ऐसे यथार्थवाद और संगतिके साथ किया जाता है कि जहां वह उसका ज्ञान रखनेवालोंके लिए आध्यात्मिक अनुभवको सूचित करता है, वहां दूसरोंके लिए वह केवल बाह्य वस्तुका ही द्योतक होता है, ठीक वैसे ही जैसे बंगालका वैष्णव काव्य भक्तिप्रवण मनके लिए मानव आत्माके ईश्वर प्रेमका भौतिक और आवय्य रूपक या संकेत प्रस्तुत करता है, किंतु सांसारिक लोगोंके लिए वह एक ऐसे ऐन्द्रिय और उत्तेजक प्रेम-काव्यके सिवा कुछ नहीं होता जो रुढिबद्ध रूपसे कृष्ण और राधाके परंपरागत मानव-दिव्य व्यक्तियोंकी धुरीपर ही अवलंबित रहता है । दोनों पद्धतियां एक साथ मिलकर कार्य कर सकती हैं, अर्थात् बाह्य रूपकोंकी नियत प्रणालीको काव्यके शरीरके रूपमें प्रयुक्त किया जाय जब कि उनकी पहली सीमाओंको पार करने, उन्हें केवल आरंभिक सुझावोंके रूपमें बरतने और सूक्ष्मताके साथ रूपांतरित करने जधवा यहांतक कि उन्हें त्याग देने या किसी गौण स्वरके रूपमें दबा देने या फिर उन्हें अतिक्रम कर जानेकी स्वतंत्रता प्रायः ही बरती जाय ताकि (सत्यकी शांतिके लिए) वे हमारे मनोंके संमुख तो पारदर्शक-सा पर्दा प्रस्तुत करते हैं वह ठट जाय या एक खुले सत्यदर्शनमें परिणत हो जाय । इनमेंसे अंतिम वेदकी पद्धति है और वह कविके जंघर होनेवाले दृष्टिके संवेग और दबावके तथा उसके उद्गारकी उदात्तताके अनुसार मिश्र-मिश्र होती है ।

वेदके कवियोंकी मनोवृत्ति हमारी मनोवृत्तिसे भिन्न थी,

उनका अपने रूपकोंका प्रयोग निराके प्रकारका है और एक प्राचीन ढंगकी अंतर्दृष्टि इन (रूपकों) की विषय-वस्तुको एक जद्भुत रूप-रेखा प्रदान करती है । भौतिक और आंतरात्मिक लोक उनकी दृष्टिमें वैश्व देवताओंकी एक एक अभिव्यक्ति और एक द्विविध एवं विभिन्न पर फिर भी संषद्ध और सजातीय प्रतिमूर्ति थे, मनुष्यका आंतरिक और बाह्य जीवन देवताओंके साथ एक दिव्य आदान-प्रदान था, और इनके पीछे या एकमेव आत्मा या एक सत् जिसके कि नाम, व्यक्तित्व और शक्तियां ये देवता थे । ये देवता भौतिक प्रकृतिके स्वामी थे और साथ ही इसके मूलतत्त्व और रूप भी थे, इनके देवता थे और साथ ही इनके शरीर तथा इनकी ऐसी आंतरिक दिव्य शक्तियां भी थे जिनसे मिलती जुलती अवस्थाएं और शक्तियां हमारी चैत्य सत्तामें उत्पन्न हुई हैं क्योंकि ये विश्वकी अंतरात्म-शक्तियां हैं, सत्य और जमरताके संरक्षक तथा 'अनंत' (जदिति) के पुत्र हैं, और इनमेंसे प्रत्येक ही अपने उद्गम और अपने अंतिम सत्य-स्वरूपमें वह परम आत्मा है जिसने अपने अनेक रूपोंमेंसे एकको सामनेकी ओर कर रखा है ।

इन क्रांतदृष्टियोंके लिये मनुष्यका जीवन सत्य और असत्यके मिश्रणसे बनी हुई एक वस्तु था, मर्यतासे अमरताकी ओर, इस मिश्रित प्रकाश और अंधकारसे एक ऐसे दिव्य सत्यके महातेजकी ओर गति था जिसका घर ऊपर अनंतमें है पर जिसका निर्माण यहां मनुष्यकी अंतरात्मा और जीवनमें भी किया जा सकता है, साथ ही मनुष्यका जीवन प्रकाशकी संतानों और अंधकारके पुत्रोंके बीच एक संग्राम था, एक खजानेकी, देवताओंके द्वारा मानव योद्धाको दिये गये ऐश्वर्य एवं जीतके मालकी प्राप्त करना था, और साथ ही वह एक यात्रा एवं यज्ञ था । और इन चीजोंका वर्णन वे ऐसे रूपकोंकी एक नियत पद्धतिके द्वारा करते थे जो प्रकृतिसे तथा शुद्धप्रिय, पशुपालक और कृषि-जीवी आर्य जातियोंके पारिपार्श्विक जीवनसे लिए गये थे और जगिन-उपासनाकी प्रणाली, सजीव प्रकृतिकी शक्तियोंकी पूजा और यज्ञकी प्रथाके चारों ओर केंद्रित थे । बाह्य अस्तित्व और यज्ञकी छोटी-मोटी क्रियाएं उनके जीवन तथा आचरणमें आंतरिक वस्तुओंके प्रतीक थीं, और उनके काव्यमें ये क्रियाएं उन वस्तुओंके निर्जीव प्रतीक या कृत्रिम

वैदिक साहित्य

(३०३)

उपमाएं नहीं बल्कि जीवन्त और शक्तिशाली संकेत और प्रतिलिपियां थीं। और अपने भावोंके प्रकाशनके लिये वे अन्य रूपकोंके एक सुनिश्चित पर फिर भी परिवर्तनीय जाकारका और गाथा एवं दृष्टांतके वज्जवल ताने-बानेका भी प्रयोग करते थे, ऐसे रूपकोंके जो दृष्टांत बन जाते थे, ऐसे दृष्टांतोंकी जो गाथाएं बन जाती थीं और ऐसी गाथा-जोंका जो सदा रूपक ही रहती थीं, और फिर भी ये सब चीजें उनके लिये, एक ऐसे प्रकारसे जिसे केवल वही समझ सकते हैं जो एक विशेष श्रेणीके आंतरात्मिक अनुभवमें प्रवेश पा चुके हैं, यथार्थ सद्रूपएं थीं।

भौतिक वस्तु अपनी छायाजोंको आंतरात्मिक वस्तुकी प्रमाजोंमें विछीन कर देती थी, आंतरात्मिक गहरी होकर 'आध्यात्मिक' के प्रकाशमें परिणत हो जाती थी और इस संक्रमणमें कोई तीव्र विभाजक रेखा नहीं होती थी, होता था केवल उनके संकेतों और रंगोंका स्वाभाविक संमिश्रण और परस्पर प्रभाव। यह प्रत्यक्ष ही है कि इस प्रकारकी दृष्टि या कल्पनावली व्यक्तियों द्वारा लिखा हुआ इस प्रकारका काव्य केवल भौतिक सत्ताके नियमोंका ही ध्यान रखनेवाली तर्कबुद्धि और रुचिके मानदंडोंके द्वारा समझा या समझाया नहीं जा सकता और न वह इनके द्वारा परखा ही जा सकता है। 'क्रीडा कर जो रहिम, हमारी जोर भमिमुख हो' यह जावाहन एक साथ ही भौतिक वेदीपर प्रज्वलित शक्तिशाली यज्ञिय ज्वालाजोंके भस्मक उठने एवं प्रकाशपूर्ण क्रीडा करने तथा एक इसी प्रकारकी आंतरात्मिक क्रियाका अर्थात् हमारे अंदर एक दिव्य शक्ति और ज्योतिकी उद्धारकारी ज्वालाके प्रकट होनेका संकेत है।

पश्चिमी जालोचक उस साहसपूर्ण तथा विवेकशून्य रूपकपर— जो उसे भयानक भी प्रतीत होता है— नाक-औं सिकोडता है जिसमें कहा गया है कि चावापृथिवीका पुत्र इन्द्र अपने ही पिता और माताको जन्म देता है, पर यदि हम बात स्मरण रखें कि इन्द्र परम आत्मा ही है जो अपने एक अन्यतम नित्य-शाश्वत रूपमें विद्यमान है, पृथिवी और यौक्ता स्रष्टा है, मनोमय और भौतिक लोकोंके बीच एक वैश्व देवताके रूपमें उत्पन्न हुआ है और उन लोकोंकी शक्तियोंको मनुष्योंमें फिर से उत्पन्न करता है, तो हम देखेंगे कि यह रूपक केवल शक्तिशाली ही नहीं

अपितु सचमुचमें एक यथार्थ और सत्यप्रकाशक जलंकार है, और वैदिक परिभाषामें इस बातका कोई महत्व नहीं कि यह भौतिक कल्पनाको मर्यादाको भंग करता है, क्योंकि यह एक महत्तर काव्य-शक्तिके साथ न कर सकता। वेदके धृषभ और गौ, सूर्यके चमकीले 'गोयूथ' जो गुफामें छुपे पड़े हैं स्थूल मनके लिए काफी विचित्र प्राणी हैं, पर वे इस पृथिवीकी चीजें नहीं हैं, और अपने स्तरमें वे एक ही साथ रूपक और यथार्थ वस्तुएं दोनों हैं और जीवन तथा जर्णसे पूर्ण हैं। वैदिक काव्यकी व्याख्या और सरा हुना हमें जाद्योपांत इसी ढंगसे, इसकी अपनी मूलभावना और दृष्टि, तथा इसके विचारों और जलंकारोंके सत्यके अनुसार ही करनी चाहिये जो हमारे लिए भले ही विचित्र और अतिप्राकृतिक हो पर आंतरात्मिक दृष्टिसे तो बिल्कुल स्वाभाविक है।

वेदको जब इस प्रकार समझ लिया जाता है तो वह एक जद्भुत, उदात्त और शक्तिशाली काव्य-रचना ठहरता है, साथ ही उसका यह जाकर्षक तो है ही कि वह संसारका सबसे पहला, फिर भी अबतक उपलब्ध धार्मिक ग्रंथ है और मनुष्य, परमेश्वर तथा विश्वकी सबसे प्राचीन व्याख्या है। वह अपने रूप और भाषामें कोई वर्षर कृति नहीं है। वेदके कवि उत्कृष्ट काव्य-कलाके विचारद हैं, उनके स्वर-ताल देवताजोंके र्योंके समान जलंकृत हैं और ध्वनिके दिव्य तथा विशाल पंखोंपर सवार हैं, एक साथ ही केंद्रित तथा सुदूरव्यापी हैं, गतिच्छंदमें महान् और स्वरलहरीमें सूक्ष्म हैं, उनकी वाणी गहराईके कारण भावोत्तेजक और ऊंचाईके कारण वीररसमयी होती हुई एक महान् शक्तिका उद्गार है, अपनी रूपरेखामें विशुद्ध, साहसपूर्ण और विराट् है एक ऐसी वाणी है जो हृदय पर सीधे और संघट्ट रूपमें प्रभाव डालती है तथा जो जर्ण और संकेतसे इस तरह लबालब भरी हुई है कि प्रत्येक मंत्र अपने-आपमें एक सशक्त और पर्याप्त वस्तुके रूपमें अपना जस्तिव रखता है और साथ ही जो कुछ पहले जा चुका है और जो बादमें जाता है उन दोनोंके बीचके एक बड़े पगके रूपमें भी अपना स्थान रखता है।

निष्ठापूर्वक अनुसरण की हुई एक पवित्र और पुरोहितीय परंपरा ही उन्हें अपने विषयका बाह्य रूप और सारतत्त्व

दोनों प्रदान करती थी, परंतु यह सारतत्त्व उन गहरेसे गहरे जांतरात्मिक एवं आध्यात्मिक अनुभवोंसे गठित होता था जिनतक मानव जात्माकी पहुंच हो सकती है और वे रूप हासको प्राप्त होकर कदाचित् ही कभी रूढ़िमें परिणत होते हैं या कभी भी नहीं होते, क्योंकि जिस वस्तुको घोषित करनेके लिए वे अभिप्रेत हैं उसे प्रत्येक कवि अपने जीवनमें उतारता था और अपने वैयक्तिक अंतर्दर्शनकी सूक्ष्म या उदात्त अवस्थाओंके द्वारा वह उन्हें अपने मनके लिए अभिव्यक्तिका नया रूप प्रदान करता था। विश्वामित्र वामदेव, दीर्घतमस् तथा अन्य बहुतसे जतिमहान् ऋषि-योंके वचन एक उदात्त और रहस्यमय काव्यकी जल्यंत जसाधारण उच्चताओं एवं विशालताओंको स्पष्ट करते हैं और कुछ एक सृष्टि-सूक्त जैसी कविताएं भी हैं जो ओजस्वी और प्रसादपूर्ण रूपमें विचारके उन शिखरोंपर विचारण करती हैं जिनपर उपनिषद् अधिक स्थिरतापूर्वक आस केती हुई निरंतर विचारण करती थीं। प्राचीन भारतके मनने कोई भूल नहीं की जब कि उसने अपने समस्त दर्शन और धर्मका तथा अपनी संस्कृतिकी सभी प्रधान बातोंका मूल इन ऋषि-कवियोंकी वाणीमें जा ढूंढा, क्योंकि भारतवासियोंकी समस्त भावी आध्यात्मिकता बीज या प्रथम जाविर्भावके रूपमें वहीं (उनकी वाणीमें ही) निहित है।

पवित्र साहित्यके रूपमें वैदिक सूक्तोंको ठीक तरहसे समझनेका एक बड़ा महत्त्व यह है कि यह हमें भारतीय मन पर शासन करनेवाले प्रधान विचारोंका ही नहीं अपितु उसके आध्यात्मिक अनुभवके विशिष्ट प्रकारों, उसकी कल्पनाके झुकाव, उसके सर्जन कील स्वभाव तथा उसके उन विशेष प्रकारके अर्थपूर्ण रूपोंका भी मूल स्वरूप देखनेमें सहायता पहुंचाता है जिनमें वह जात्मा और पदार्थों तथा जगत् और जीवनके संबंधमें अपनी दृष्टिको दृढतापूर्वक व्याख्या करता था। भारतीय साहित्यके एक बड़े भागमें हमें अंतःप्रेरणा और आत्म-अभिव्यंजनका वही झुकाव देखनेमें जाता है जिसे हम अपने स्थापत्य, चित्रकला और मूर्तिकलामें पाते हैं।

इसकी पहली विशेषता यह है कि इसे सतत रूपसे अनंत एवं वैश्व सत्ताका बोध होता है, और वस्तुओंका भी उस रूपमें मान होता है जैसी कि वे वैश्व दृष्टिमें या उसके द्वारा प्रभावित होनेपर दीखती हैं, अथवा जैसी वे एकमेव और अनंतकी विशालताके भीतर या संमुख रखनेपर दिखायी हैं, इसकी दूसरी विशेषता यह है कि यह अपने आध्यात्मिक अनुभवको आभ्यंतर चैत्य स्तरसे लिये गये रूपकोंके परमेश्वर्यके रूपमें अथवा भौतिक रूपकोंके रूपमें देखने और व्यक्त करनेमें प्रवृत्त होता है जो चैत्य अर्थ, प्रभाव, रेखा और विचार-छटाके दबावके द्वारा रूपांतरित हो चुके होते हैं, और इसकी तीसरी प्रवृत्ति पार्थिव जीवनको प्रायः परिवर्द्धित रूपमें चित्रित करनेकी है, जैसा कि हम महा-भारत और रामायणमें देखते हैं, अथवा उसे एक विशाल-तर वातावरणकी शुभ्रताओंमें सूक्ष्म रूप प्रदान कर तथा पार्थिव अर्थकी अपेक्षा किसी महत्तर अर्थसे संयुक्त करके चित्रित करने या, कमसे कम उसे केवल उसके अपने पृथक् रूपमें ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक और जांतरात्मिक लोकोंकी पृष्ठभूमिमें प्रस्तुत करनेकी है।

आध्यात्मिक एवं अनंत सत्ता निकटस्थ और वास्तविक है तथा देवता भी वास्तविक हैं और (हमसे) परेके लोक हमारी सत्तासे परे होनेकी अपेक्षा कहीं अधिक उसके भीतर अवस्थित हैं। जो चीज पश्चिमी मनके लिये एक गाथा और वंतु, जो चीज वहां एक सुन्दर काव्यमय परिकल्पना और दार्शनिक विचारणा है वह यहां एक ऐसी वस्तु है जो अनुभवके लिये सर्वदा उपलब्ध और विद्यमान है। भारतीय मनकी यह प्रवृत्ति, उसकी आध्यात्मिक सद्-हृदयता एवं जांतरात्मिक प्रत्यक्षवादिता ही वेद और उपनिषदोंकी तथा पीछेके धार्मिक एवं धर्म्य-दार्शनिक काव्यकी अंतःप्रेरणाकी दृष्टिसे इतना शक्तिशाली और अभिव्यंजनां तथा रूपककी दृष्टिसे इतना अंत रंग और सजीव रूप प्रदान करती है, साथ ही अधिक कौकिक साहित्यमें भी काव्यमय भावना और कल्पनाकी क्रियापर इसका प्रभाव कुछ कम अभिभूतकारी होनेपर भी अत्यंत प्रत्यक्ष रूपमें दृष्टिगोचर होता है।

कुछ वैदिक प्रतीक

(श्री अरविन्द)



वैदिक ऋषियोंके इस आधारभूत विचारको हम 'सृष्टि-सूक्त' (१०।१२९) में प्रतिपादित किया हुआ पाते हैं, जहां कि अवचेतनका इस प्रकार वर्णन किया गया है, 'अंधकारसे विरा हुआ अंधकार, यही सप कुछ था जो कि प्रारम्भमें था, एक समुद्र था जो कि बिना मानसिक चेतनाके था... इसमेंसे एक पैदा हुआ, अपनी शक्तिकी महत्ताके द्वारा। (३)। पहले पहल इसके अन्दर इसने इच्छा (काम) के रूपमें गति की, जो इच्छा कि मनका प्रथम बीज था। उन्होंने जो कि बुद्धिके स्वामी थे असत्मेंसे उसे पा लिया जो कि सत्का निर्माण करता है, हृदयके अन्दर उन्होंने इसे सोद्देश्य अन्तःप्रवृत्तिके द्वारा और विचारात्मक मन द्वारा पाया। (४)। उनकी किरण दिगन्तसम रूपसे फैली हुई थी, उसके ऊपर भी कुछ था, उसके नीचे भी कुछ था ॥ (५)।' इस संदर्भमें वे ही विचार प्रतिपादित हैं जो कि वामदेवके सूक्तमें, परन्तु रूपकोंका आवरण यहां नहीं है। अवचेतनके समुद्रमेंसे 'एक तत्त्व' हृदयमें उठता है जो सर्वप्रथम इच्छा (काम) के रूपमें जाता है; वहां हृदय-समुद्रमें वह सत्ताके जानन्दकी एक अव्यक्त इच्छाके रूपमें गति करता है और यह इच्छा उसका प्रथम बीज है जो कि बादमें हृन्दिग्राहित मनके रूपमें प्रकट होता है। इस प्रकार देवताओंकी अवचेतनके अन्धकारमेंसे सत्को सचेतन सत्ताको, निर्मित कर लेनेका एक साधन मिल जाता है, वे इसे हृदयमें पाते हैं और विचारके तथा सोद्देश्य प्रवृत्तिके विकासके द्वारा बाहर निकाल लाते हैं,

'प्रतीक' जिस शब्दसे मनोमय इच्छाका ग्रहण करना अभिप्रेत है, जो कि उस पहली अस्पष्ट इच्छासे भिन्न है जो कि अवचेतनमेंसे प्रकृतिकी केवल प्राणमय गतियोंमें उठती है। सचेतन सत्ता, जिसे कि वे इस प्रकार रचते हैं, इस प्रकार विस्तृत होती है मानो कि वह अन्य दो विस्तारोंके बीचमें दिगन्तसम रूपमें हो; नीचे अवचेतनकी अन्धकारमय निद्रा होती है, ऊपर होती है अतिचेतनकी प्रकाश पूर्ण रहस्यमयता। ये ही ऊपरले और निचले समुद्र हैं।

यह वैदिक अंधकार पुराणोंके इसी प्रकारके प्रतीकात्मक अंधकारोंपर भी एक स्पष्ट प्रकाश डालता है, विशेषकर 'विष्णु' के इस प्रसिद्ध प्रतीकपर कि वह प्रलयके बाद क्षीरसागरमें 'अनंत' सांपकी कुण्डलीमें शयन करता है। यहां यह आक्षेप किया जा सकता है कि पुराण तो उन अन्धविश्वासी हिंदू पुरोहितों या कवियों द्वारा लिखे गये थे जो यह विश्वास रखते थे कि ग्रहणोंका कारण यह है कि एक दैत्य सूर्य और चन्द्रमाको असता (खा जाता) है और वे आसानीसे ही इसपर भी विश्वास कर सकते थे कि प्रलयके समय परमात्मा भौतिक शरीरमें सचमुचके दूधके भौतिक समुद्रमें एक भौतिक सांपके ऊपर सोने जाता है और इसलिये यह व्यर्थका बुद्धिकौशल दिखाना है कि इन कहानियोंका कोई आध्यात्मिक अर्थ खोजा जाए। मेरा उत्तर यह होगा कि वस्तुतः उनमें ऐसे अभिप्राय खोजनेकी, ढूंढनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि इन्हीं 'अन्धविश्वासी' कवियोंने ही वहां स्पष्ट रूपसे कहानियोंके उपरिष्ठपर ही

ॐ तम आसीत्तमसा गूल्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमाद्दम् ।

(तुच्छधेनाम्बपिहितं यदासीत्) तपसस्तन्महिनाऽजायतैकम् ॥ ३ ॥

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।

सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीक्या कवयो मनीषा ॥ ४ ॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः खिदासीदुपरि खिदासीत् ॥ ५ ॥

उन अभिप्रायोंको रख दिया है जिससे कि उन्हें प्रत्येक व्यक्ति, जो कि ज्ञान वृद्धकर अन्धा नहीं बनता, देख सकता है। क्योंकि उन्होंने विष्णुके सांपका एक नाम भी रखा है, वह नाम है 'जनंत', जिसका अर्थ है असीम; इसलिये उन्होंने हमें पर्याप्त स्पष्ट रूपमें कह दिया है कि यह कल्पना एक जलंकार ही है और विष्णु, अर्थात् सर्वव्यापक देवता, प्रलयकालमें जनंतकी अर्थात् असीमकी कुण्डलियोंके अन्दर शयन करता है। बाकी क्षीरसमुद्रके विषयमें यह कि वैदिक जलंकार हमें यह दर्शाता है कि यह असीम सत्ताका समुद्र होना चाहिये और असीम सत्ताका समुद्र है नितान्त मधुरताका, दूसरे शब्दोंमें विशुद्ध सुखका एक समुद्र। क्योंकि क्षीर या मधुर दूध (जो कि स्वयं भी एक वैदिक प्रतीक है) स्पष्ट ही एक ऐसा अर्थ रखता है जो कि वाम-देवके सूक्तके 'मधु' शब्द या मधुरतासे सारतः भिन्न नहीं है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि वेद और पुराण दोनों एक ही प्रतीकात्मक जलंकारोंका प्रयोग करते हैं; समुद्र उनके लिये असीम और शाश्वत सत्ताका प्रतीक है। हम यह भी पाते हैं कि नदी या बहनेवाली धाराके रूपकको सचेतन सत्ताके प्रवाहका प्रतीकात्मक वर्णन करनेके लिये प्रयुक्त किया गया है। हम देखते हैं कि सरस्वती, जो कि सात नदियोंमेंसे एक है, अन्तः प्रेरणाकी नदी है जो कि सत्य चेतनासे निकलकर बहती है। तो हमें यह कल्पना करनेका अधिकार है कि अन्य छः नदियां भी जाध्यात्मिक प्रतीक होनी चाहिये।

यज्ञ यह है कि मनुष्यके पास अपनी सत्तामें जो कुछ है उसे वह उच्चतर या दिव्य स्वभावको अर्पित कर दे और इस यज्ञका फल यह होता है कि उसका मनुष्यत्व देवोंके मुक्त हस्त दानके द्वारा और अधिक समृद्ध हो जाता है। बौलत जो इस प्रकार यज्ञ करनेसे प्राप्त होती है जाध्यात्मिक ऐश्वर्य, समृद्धि, आनन्दकी अवस्थासे निर्मित होती है और यह अवस्था स्वयं यात्रामें सहायक होनेवाली एक शक्ति है और युद्धकी एक शक्ति है। क्योंकि यज्ञ एक यात्रा है, एक प्रगति है, यज्ञ स्वयं यात्रा करता है जो उसकी यात्रा 'अग्नि' को नेता बनाकर दिव्य मार्गसे देवोंके प्रति होती है और 'स्वः' के दिव्य लोकके प्रति अंगिरस

पितरोंका आरोहण इसी यात्राका आदर्श रूप (नमूना) है। अंगिरस पितरोंकी यह आदर्श यज्ञ यात्रा एक युद्ध भी है, क्योंकि पाणि, वृत्र तथा पाप और जनंतकी अन्य शक्तियां इस यात्राका विरोध करती हैं और इस युद्धका इन्द्र तथा अंगिरस ऋषियोंकी पणियोंके साथ लड़ाई एक मुख्य कथांग है।

यज्ञके प्रधान अंग है ज्वालाको प्रज्वलित करना, 'घृत' की तथा सोमरसकी हवि देना और पवित्र शब्दका गान करना। स्तुति तथा हविके द्वारा देव प्रवृद्ध होते हैं, उनके लिये कहा गया है कि वे मनुष्यके अंदर उत्पन्न होते हैं, रचे जाते हैं या अभिव्यक्त होते हैं, तथा यहां अपनी वृद्धि और महत्तासे वे पृथिवी और द्यौ को अर्थात् भौतिक और मानसिक सत्ताको इनका अधिकसे अधिक जितना ग्रहण सामर्थ्य होता है उतना बड़ा देते हैं और फिर, इन्हें जतिक्रान्त करके, अवसर आने पर उच्चतर लोकों या स्तरोंकी रचना बना देते हैं। उच्चतर सत्ता दिव्य है, असीम है, जिसकी चमकीली गौ, असीम माता, अदिति प्रतीक है; निम्न सत्ता उसके अन्धकारमय रूप दितिके अधीन है।

यज्ञका लक्ष्य है उच्च या दिव्य सत्ताको जीतना, और निम्न या मानवीय सत्ताको इस दिव्य सत्तासे युक्त कर देना तथा इसके नियम और सत्यके अधीन कर देना। यज्ञ का 'घृत' चमकीली गौ की देन है, यह 'घृत' मानवीय मनोवृत्तिके अन्दर सौर प्रकाशकी निर्मलता या चमक है। 'सोमरस' है सत्ताका अमृतरूप आनन्द जो कि जलोंमें और सोम नामक पौधे (कता) में निगूढ़ रहता है और देवों तथा मनुष्यों द्वारा पान करनेके लिये निचोड़ा जाता है। शब्द है अन्तः प्रेरित वाणी जो कि सत्यके उस विचार प्रकाशको अभिव्यक्त करती है जो आत्मामेंसे उठता है, हृदयमें निर्मित होता है और मन द्वारा आकृतियुक्त होता है। 'अग्नि' घृतसे प्रवृद्ध होकर और 'इन्द्र' सोमकी प्रकाशमय शक्तिले तथा आनन्दसे सबल और शब्द द्वारा प्रवृद्ध होकर, सूर्यकी गौओंको फिरसे पा लेनेमें अंगिरसोंकी सहायता करता है।

वृहस्पति सर्जनकारी शब्दका अधिपति है। यदि अग्नि प्रथम अंगिरा है, वह ज्वाला है जिससे कि अंगिरस ऋषि पैदा हुए हैं तो वृहस्पति वह एक अंगिरा है जो सात मुख

वाला अर्थात् प्रकाशकारी विचारकी सात किरणोंवाला और इस विचारको अभिगम्य करनेवाले सात शब्दोंवाला (एक जंगिरा) है, जिसकी ये सात ऋषि (अंगिरस्) उच्चारण शक्तियां बने हैं। यह सत्यका सात सिरोंवाला अर्थात् पूर्ण विचार है जो कि मनुष्यके लिये यज्ञकी लक्ष्यभूत पूर्ण आध्यात्मिक दौलतको जीतकर उसके लिये चौथे या दिव्य लोकको जीत लाता है। इसलिये, अग्नि, इन्द्र, वृहस्पति, सोम सभी इस रूपमें वर्णित किये गये हैं कि ये सूर्यकी गौणोंको जीत लानेवाले हैं और उन दस्युओंके विनाशक हैं जो कि उन गौणोंको छिपा लेते हैं और मनुष्यके पास जानेसे रोकते हैं। सरस्वती भी, जो कि दिव्य शब्दकी धारा या सत्यकी अन्तः प्रेरणा है, दस्युओंका वध करनेवाली और चमकीली गौणोंको जीतनेवाली है, उन गौणोंको दूढ़ा है इन्द्रकी अग्रदूती सरमाने जो कि सूर्यकी या उषाकी एक देवी है और सत्यकी अन्तर्ज्ञानमयी शक्तिकी प्रतीक मालूम होती है। उषा एक साथ दोनों है, स्वयं वह इस महान् विजयमें एक कार्यकर्त्री भी है और पूर्ण रूपमें उसका आगमन इस विजयका उज्ज्वल परिणाम है।

उषा दिव्य अरुणोदय है, क्योंकि सूर्य जो कि उसके आगमनके बाद प्रकट होता है पराचैतन सत्यका सूर्य है; दिन जिसको वह सूर्य लाता है सत्यमय ज्ञानके अन्दर होनेवाला सत्यमय जीवनका दिन है, रात्रि जिसे वह विध्वस्त करता है अज्ञानकी रात्रि है जो कि उषाको अपने अन्दर छिपाये रखती है। उषा स्वयं सत्य है, सुनृता है और सत्योंकी माता है। दिव्य उषाके इन सत्योंको उषाकी गौएं, उषाके चमकीले पशु कहा गया है, जबकि सत्यके वेगवान् बैलोंको जो कि उन गौणोंके साथ रहते हैं और जीवनको अधिष्ठित करते हैं उषाके घोड़े कहा गया है। गौणों और घोड़ोंके इस प्रतीकके चारों ओर वैदिक प्रतीकवादका अधिकांश घूम रहा है, क्योंकि ये ही उन सम्पत्तियोंके मुख्य अंग हैं जिनको मनुष्यने देवोंसे पाना चाहा है। उषाकी गौणोंको अन्धकारके अधिपति दानवोंने चुरा लिया है और ले जाकर गूढ़ अवचेतनाकी अपनी निम्नतर गुफामें छिपा दिया है। वे गौएं ज्ञानकी ज्योतियां हैं, सत्यके विचार हैं (गावो मतयः) जिन्हें उनकी इस कैदसे छुटकारा दिलाना है। उनके छुटकारेका अभिप्राय है दिव्य उषाकी शक्तियोंका

वेगसे उर्ध्वगमन होने लगना।

साथ ही इस छुटकारेका अभिप्राय उस सूर्यकी पुनः प्राप्ति भी है जो कि अन्धकारमें छिपा पड़ा था, क्योंकि वह कहा गया है कि सूर्य अर्थात् दिव्य सत्य, 'सत्यं तत्', वही वह वस्तु थी जिसे इन्द्र और अंगिरसोंने पणियोंकी गुफामें पाया था। उस गुफाके विदीर्ण हो जानेपर दिव्य उषाकी गौएं जो कि सत्यके सूर्यकी किरणें हैं आरोहण करके सत्ताकी पहाड़ीके ऊपर जा पहुंचती हैं और सूर्य स्वयं दिव्य सत्ताके प्रकाशमान उर्ध्व समुद्रमें ऊपर चढ़ता है, जो विचारक हैं वे जलमें जहाजकी तरह इस ऊर्ध्व समुद्रमें इस सूर्यको आगे आगे ले जाते हैं जबतक कि वह इसके दूरवर्ती परले तटपर नहीं पहुंच जाता।

पण जो कि गौणोंको कैद करनेवाले हैं, जो निम्न गुफाके अधिपति हैं, दस्युओंमेंकी एक श्रेणीके हैं; जो दस्यु वैदिक प्रतीकवादमें आर्य देवों और आर्य द्रष्टाओं तथा कार्यकर्ताओंके विरोधमें रखे गये हैं। आर्य वह है जो यज्ञ के कार्यको करता है, प्रकाशके पवित्र शब्दको प्राप्त करता है, देवोंको चाहता और उन्हें बढ़ाता है तथा स्वयं उनसे बढ़ाया जाकर सच्चे अस्तित्वकी विभालताको प्राप्त करता है; वह प्रकाशका योद्धा है और सत्यका यात्री है। 'दस्यु' है अदिव्य सत्ता जो किसी प्रकारका यज्ञ नहीं करती, दौलतको बटोर-बटोरकर जमा तो कर लेती है पर उसका ठीक प्रकार उपयोग नहीं कर सकती, क्योंकि वह शब्दको नहीं बोल सकती या पराचैतन सत्यको मनोगत नहीं कर सकती, शब्दसे, देवोंसे और यज्ञसे द्वेष करती है और अपने आपसे कोई वस्तु उच्च सत्ताओंको नहीं देती, बल्कि आर्यकी उसकी अपनी दौलतको उससे लूट लेती है और अपने पास रोक रखती है। वह चोर है, शत्रु है, भेडिया है, भक्षक है, विभाजक है, बाधक है, अवरोधक है। दस्यु अन्धकार और अज्ञानकी शक्तियां हैं जो सत्यके तथा अमरत्वके अन्वेषका विरोध करती हैं। देव हैं प्रकाशकी शक्तियां असीमता (अदिति) के पुत्र, एक परम देवके रूप और व्यक्तित्व जो अपनी सहायताके द्वारा तथा मनुष्यके अन्दर अपनी वृद्धि और मानुष व्यापारोंके द्वारा मनुष्यको ऊँचा उठाकर सत्य और अमरतातक पहुंचा देते हैं।

आध्यात्मिकवादके आधार

श्री अरविन्द

★

वेदोंके अर्थके विषयमें कोई वाद निश्चित और युक्तियुक्त हो सके, इसके लिये यह आवश्यक है कि वह ऐसे आधार पर टिका हो जो स्पष्ट और परस्पर स्वयं वेदकी ही भाषामें विद्यमान हो। चाहे वेदमें जो सामग्री है उसका अधिक भाग प्रतीकों और अलंकारोंका एक समुदाय हो, जिसका आशय खोजकर पता लगानेकी आवश्यकता है, तो भी मंत्रोंकी स्पष्ट भाषामें ही हमें साफ साफ निर्देश मिलने चाहिये जो वेदका आशय समझनेमें हमारा पथ-प्रदर्शन करें। नहीं तो, क्योंकि प्रतीक स्वयं संदिग्ध अर्थको देने-वाले हैं, यह खतरा है कि ऋषियोंने जिन अलंकारोंको चुना है उनके वास्तविक अर्थको ठूँढ़ निकालनेके बजाय कहीं हम अपनी स्वतंत्र कल्पनाओं और पसन्दगीके बलपर कुछ और ही वस्तु न गढ़ डालें। उस अवस्थामें, हमारा सिद्धान्त चाहे कितना ही बुद्धिपूर्वक और पूर्ण क्यों न हो, यह हवाई झिके बनानेके समान होगा जो ज्ञानदार मले हो पर उसमें कोई वास्तविकता या सार नहीं होगा।

इसलिये हमारा सबसे पहला कर्त्तव्य यह है कि हम इस बातका निश्चय करें कि अलंकारों और प्रतीकोंके जतिरिक्त, वेदमंत्रोंकी स्पष्ट भाषामें आध्यात्मिक विचारोंका पर्याप्त बीज विद्यमान है या नहीं जो हमारी इस कल्पनाको न्यायोचित सिद्ध कर सके कि वेदका जंगली और अनवष्ट अर्थकी जगह एक उच्चतर अर्थ है। और इसके बाद हमें, जहाँतक हो सके स्वयं सूक्तोंकी अन्तः साक्षीके ही द्वारा प्रत्येक प्रतीक और अलंकारका वास्तविक अभिप्राय क्या है तथा वैदिक देवताओंमेंसे प्रत्येकका अलग अलग ठीक ठीक आध्यात्मिक व्यापार क्या है यह मालूम करना होगा। वेदकी प्रत्येक नियत परिभाषाका एक स्थिर, न कि हल्का-नुसार बढ़ते रहनेवाला, अर्थ पता लगाना होगा जिसकी प्रामाणिकता ठीक ठीक भाषाविज्ञानसे पुष्ट होती हो और जो उस प्रकरणमें जहाँ वह शब्द आता है स्वभावतः ही बिस्कुट उपयुक्त बैठता हो।

क्योंकि जैसा पहले ही कहा जा चुका है, वेदमंत्रोंकी भाषा एक नियत तथा अपरिवर्तनीय भाषा है, यह सावधानीके साथ सुरक्षित तथा निर्दोष रूपसे आदर पाई हुई वाणी है, जो या तो एक विधि-विधान संबंधी सम्प्रदाय और याज्ञिक कर्मकाण्डको अथवा एक परम्परागत सिद्धान्त और सतत अनुभूतिको संगतिपूर्वक अभिव्यक्त करती है। यदि वैदिक ऋषियोंकी भाषा स्वच्छन्द तथा परिवर्तनीय होती, यदि उनके विचार स्पष्ट और तैरसे तरल अवस्थामें, अस्थिर और अनियत होते, तब हम कह सकते कि उनकी परिभाषाओंमें जैसा चाहो वैसा अर्थ कर देनेकी सुलभ छूट है तथा असंगति है, यह बात एवं उनके विचारोंमें हम जो कुछ संबंध निकालते हैं, वह सब न्याय्य अथवा अथवा सत्य हो सकता।

परन्तु वेदमंत्र प्रत्यक्ष ही इसके विरुद्ध साक्षी देते हैं। इसलिये हमें यह मांग करनेका अधिकार है कि व्याख्याकारको अपनी व्याख्या करते हुए वैसी ही सचाई और सतर्कता रखनी चाहिये, जैसी उस मूलमें रखी गई है जिसकी वह व्याख्या करना चाहता है। वैदिक धर्मके विभिन्न विचारों और उसकी अपनी परिभाषाओंमें स्पष्ट ही एक अविविच्छिन्न संबंध है। उनकी व्याख्यामें यदि असंगति और अनिश्चितता होगी, तो उससे केवल यही सिद्ध होगा कि व्याख्याकार ठीक ठीक संबंधको पता लगानेमें असफल रहा है, न कि वेदकी प्रत्यक्ष साक्षी आन्तिजनक है।

इस प्रारम्भिक प्रयासको सतर्कता तथा सावधानीके साथ कर चुकनेके पश्चात् यदि मंत्रोंके अनुवादके द्वारा यह दिखाया जा सके कि जो अर्थ हमने निश्चित किये थे वे स्वाभाविकतया और आसानीके साथ किसी भी प्रकरणमें ठीक बैठते हैं, यदि उन अर्थोंको हम ऐसा पायें कि उनसे धुंधले दीखनेवाले प्रकरण स्पष्ट हो जाते हैं और जहाँ पहले केवल असंगति और अव्यवस्था मालूम होती थी वहाँ उनसे समझमें जाने योग्य और स्पष्ट स्पष्ट संगति दीखने

आध्यात्मिकवादके आधार

(३०९)

लगती है; यदि पूरेके पूरे सूक्त इस प्रकार एक स्पष्ट और सुसम्बद्ध आश्रयको देने लग जायें और क्रमबद्ध मंत्र सम्बद्ध विचारोंकी एक युक्तियुक्त शृंखलाको दिखाने लगें, और कुल मिला कर जो परिणाम निकले वह यदि सिद्धान्तोंका एक गम्भीर, संगत तथा पूर्ण समुदाय हो, तो हमारी कल्पनाको यह आधार होगा कि वह दूसरी कल्पनाओंके मुकाबलेमें खड़ी हो और जहां वे इसके विरोधमें जाती हों वहां उन्हें ललकारे या जहां वे इसके परिणामोंसे संगति रखती हों वहां उन्हें पूर्ण बनाये।

न ही उस अवस्थामें हमारी स्थापनाकी संभवनीयता अपेक्षाकृत कम होगी, बल्कि इसके विपरीत इसकी प्रामाणिकता पुष्ट ही होगी, यदि यह पता लगे कि इस प्रकार वेदमें जो विचारों और सिद्धान्तोंका समुदाय प्रकट हुआ है वह उन उत्तरवर्ती भारतीय विचार और धार्मिक अनुभूतिका एक अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन रूप है, जो कि स्वभावतः वेदान्त और पुराणके जनक हुए हैं।

ऐसा बड़ा और सूक्ष्म प्रयास इस छोटीसी और संक्षिप्त लेखमालाके क्षेत्रसे बाहरकी बात है। इन अध्यायोंको लिखनेका मेरा प्रयोजन केवल यह है कि उनके लिये जो कि उस सूत्रका अनुकरण करना चाहते हैं जिसे कि मैंने पाया है, उस मार्गका और उसमें जानेवाके मुख्य-मुख्य मोड़ोंका दिग्दर्शन कराएं— उन परिणामोंका दिग्दर्शन कराएं जिनपर कि मैं पहुंचा हूं और उन मुख्य निर्देशोंका जिनके द्वारा कि वेद स्वयंसेव उन परिणामों तक पहुंचनेमें हमारी सहायता करता है।

और सबसे पहिले, यह मुझे उचित प्रतीत होता है कि, मैं यह स्पष्ट कर दूं कि यह कल्पना मेरे अपने मनमें किस प्रकार उदय हुई, जिससे कि पाठक जिस दिशाको मैंने अपनाया है उसे अधिक अच्छी प्रकार समझ सकें, जयवा हो सकता है कि, मेरे कोई पूर्व पक्षपात या मेरी अपनी वैयक्तिक अभिरुचियोंसे जिन्होंने कि इस कठिन प्रश्नपर होनेवाली युक्ति शृंखलाके यथोचित प्रयोगको सीमित कर दिया हो या उसे प्रभावित किया हो तो उसको, यदि पाठक चाहें, निवारण कर सकें।

जैसा कि अधिकांश शिक्षित भारतीय करते हैं, मैंने भी स्वयं वेदको पढ़नेसे पहिले ही बिना परीक्षा किये योरोप-

यन विद्वानोंके परिणामोंको कुछ भी प्रतिकार किये बगैर वैसाका वैसा ही स्वीकार लिया था, जो परिणाम कि प्राचीन मंत्रोंकी धार्मिक दृष्टि तथा ऐतिहासिक व जाति-विज्ञान संबंधी दृष्टि दोनोंके विषयमें थे। इसके फल स्वरूप, फिर जाधुनिक रंगमें रंगे हिन्दु मतसे स्वीकृत सामान्य दिशाका ही अनुसरण करते हुए, मैंने उपनिषदोंको ही भारतीय विचार और धर्मका प्राचीन स्रोत, सच्चा वेद, ज्ञानकी जादि पुस्तक समझ लिया था। ऋग्वेदके जो आधुनिक अनुवाद प्राप्त हैं, केवल मात्र वही सब कुछ था जो कि मैं इस गम्भीर धर्मपुस्तकके विषयमें जानता था और इस ऋग्वेदको मैं यही समझता था कि यह हमारे राष्ट्रीय इतिहासका एक महत्वपूर्ण लेखा है, परन्तु विचारके इतिहासके रूपमें या एक सजीव आत्मिक अनुभूतिके रूपमें मुझे इसका मूल्य या इसकी महत्ता बहुत थोड़ी प्रतीत होती थी।

वैदिक विचारके साथ मेरा प्रथम परिचय अप्रत्यक्ष रूपसे उस समय हुआ जब कि मैं भारतीय योगकी विधिके अनुसार आत्मविकासकी किन्हीं दिशाओंमें अभ्यास कर रहा था। आत्मविकासकी ये दिशाएं स्वतः ही हमारे पूर्व पित्रोंसे अनुसृत, प्राचीन और जब जनभ्यस्त मार्गोंकी ओर मेरे मनजाने ही प्रवृत्ति रखती थीं। इस समय मेरे मनमें प्रतीक रूप नामोंकी एक शृंखला उठनी शुरू हुई, जो प्रतीक किन्हीं ऐसी आध्यात्मिक अनुभूतियोंसे सम्बद्ध थे, जो अनुभूतियां नियमित रूपसे होनी आरम्भ हो चुकी थीं, और उनके बीचमें तीन खीळिंगी शक्तियां इला, सरस्वती, सरमाके प्रतीक बाने, जो कि अन्तर्ज्ञानमय बुद्धिकी चार शक्तियोंमेंसे तीनकी—क्रमशः स्वतः प्रकाश (Revelation) अन्तः प्रेरणा (Inspiration) और अन्तर्ज्ञान (Intuition) की द्योतक थीं। इन नामोंमेंसे दो मुझे इस रूपमें सुपरिचित नहीं थे कि ये वैदिक देवियोंके नाम हैं, बल्कि इससे कहीं अधिक इनको मैं यह समझता था कि ये प्रचलित हिन्दुधर्म या प्राचीन पौराणिक कथानकोंके साथ संबंध रखती हैं अर्थात् 'सरस्वती' विद्याकी देवी है और 'इला' चन्द्रवंशकी माता है। परन्तु तीसरी 'सरमा' से मैं पर्याप्त रूपसे परिचित था।

तथापि इसकी जो जाकृति मेरे अन्दर उठी थी, उसमें

जौर स्वर्गकी कुतिया 'सरमा' में मैं कोई संबंध निश्चित नहीं कर सका, जो कि 'सरमा' मेरी स्मृतिमें जार्जिव हैलेन + (Argive Helen) के साथ जुड़ी हुई थी और केवल उस भौतिक उपाके रूपककी छोटक थी, जो खोयी हुई प्रकाशकी गौजोंको खोजते-खोजते अन्धकारकी शक्तियोंकी गुफामें घुस जाती है। एक बार यदि मूल सूत्र मिल जाता, इस बातका सूत्र कि भौतिक प्रकाश मानसिक प्रकाशको निरूपित करता है, तो यह समझ जाना जासान था कि स्वर्गकी कुतिया 'सरमा' अन्तर्ज्ञान हो सकता है, जो कि अवचेतन मन (Subconscious mind) की अन्धेरी गुफाओंके अन्दर प्रवेश करता है, ताकि उन गुफाओंमें पड़े हुए ज्ञानके चमकीले प्रकाशोंको छुटकारा दिलानेकी जौर छुटकर उनके जगमगानेकी तैयारी करे। परन्तु वह सूत्र नहीं मिला, जौर मैं प्रतीकके किसी सादृश्यके बिना, केवल नामके सादृश्यको कल्पित करनेके लिये बाध्य हुआ।

पहिले पहल गंभीरतापूर्वक मेरे विचार वेदकी जौर तब आकृष्ट हुए जब कि मैं दक्षिण भारतमें रह रहा था। दो बातोंने जो कि बलात् मेरे मन पर जाकर पड़ीं, उत्तरीय जार्ज और दक्षिणीय द्रविडियोंके बीच जातीय विभागके मेरे विश्वास पर, जिस विश्वासको मैंने दूसरोंसे लिया था, एक भारी आघात पहुंचाया। मेरा यह जातीय विभागका विश्वास पूर्णतः निर्भर करता था उस कल्पित भेद पर, जो कि जायों तथा द्रविडियोंके भौतिक रूपोंमें किया गया है, तथा उस अपेक्षाकृत अधिक निश्चित विसंवादिता पर जो कि उत्तरीय संस्कृतजन्य तथा दक्षिणीय संस्कृतभिन्न भाषाओंके बीचमें पायी जाती है।

मैं उन नये अर्थोंसे तो अवश्य परिचित था, जिनके

अनुसार भारतके प्रायद्वीप पर एक ही सवर्ण जाति, द्रविड जाति या भारत-जफगान (Indo-Afghan) जाति, निवास करती है, परन्तु जब तक मैंने इनको कभी अधिक महत्व नहीं दिया था। पर दक्षिण भारतमें मुझ पर यह छाप पड़नेमें बहुत समय नहीं लगा कि तामिल जातिमें उत्तरीय या 'जार्जिन' रूप विद्यमान है। जिधर भी मैं मुड़ा, एक चकित कर देनेवाली स्पष्टताके साथ मुझे यह प्रतीत हुआ कि मैं न केवल ब्राह्मणोंमें किन्तु सभी जातियों जौर श्रेणियोंमें महाराष्ट्र, गुजरात, हिन्दुस्थानके अपने मित्रोंके उन्हीं पुराने परिचित चेहरों, रूपों, आकृतियोंको पहिचान रहा हूं, बल्कि अपने प्रान्त बंगालके भी यद्यपि यह बंगालकी समानता अपेक्षाकृत कम व्यापक रूपमें फैली हुई थी।

जो छाप मुझ पर पड़ी, वह यह थी कि मानों उत्तरकी सभी जातियों, उपजातियोंकी एक सेना दक्षिणमें उतर कर जायी हो जौर जाकर जो कोई भी लोग यहां पहिलेसे बसे हुए हों, उनमें हिल-मिल गयी हो। दक्षिणीय रूप (Type) की एक सामान्य छाप बची रही, परन्तु व्यक्तियोंकी सुखाकृतियोंका अध्ययन करते हुए उस रूपको ढढाके साथ स्थापित कर सकना असंभव था। जौर अन्तमें यह धारणा बनाये बिना मैं नहीं रह सका कि जो कुछ भी संकर हो गये हों, चाहे जो भी प्रादेशिक भेद विकसित हो गये हों, सब भिन्नेदोंके पीछे सारे भारतमें एक भौतिक-जैसे कि एक सांस्कृतिक-रूप (Type) × की एकता अवश्य है। शेषतः, यह है परिणाम जिसकी जौर पहुंचने की स्वयं जाति विज्ञान ॐ संबंधी विचार भी अधिक प्रवृत्ति रखता है।

परन्तु तो फिर उस तीव्र भेदका क्या होगा जो कि

+ ग्रीक गाथा शास्त्रकी एक देवी।

× मैंने यह पसन्द किया है कि यहाँ जाति (Race) शब्दका प्रयोग न करूं क्योंकि जाति एक ऐसी चीज है जो जैसा कि इसके विषयमें साधारणतया समझा जाता है, उसकी अपेक्षा बहुत अधिक अस्पष्ट है जौर इसका निश्चय करना बहुत कठिन है। 'जाति' के विषयमें सोचते हुए सर्वसाधारण मनमें जो तीव्र भेद प्रचलित हैं, वे यहां कुछ प्रयोजनके नहीं हैं।

ॐ यह, यह मानकर कहा है कि जाति विज्ञान संबंधी कल्पनाएं सर्वथा किसी प्रमाण पर आश्रित हैं। पर जाति विज्ञानका एकमात्र ढढ आधार यह मत है कि मनुष्यका कपाल वंशपरंपरासे अपरिवर्तनीय है जिस मतको कि अब लक-कारा जाने लगा है। यदि यह असिद्ध हो जाता है तो इसके साथ यह सारा-का-सारा विज्ञान ही असिद्ध हो जाता है।

भाषाविज्ञानियोंने जाय तथा द्राविड जातियोंके बीचमें बना रखा है ? यह समाप्त हो जाता है । यदि किसी तरह जाय जातिके जाक्रमणको मान ही लिया जाय, तो हमें या तो यह मानना होगा कि इसने भारतको जायोंसे भर दिया और इस तरह बहुत थोड़ेसे अन्य परिवर्तनोंके साथ इसीने यहांके लोगोंके भौतिक रूपको निश्चित किया, अथवा यह मानना पड़ेगा कि एक कम सभ्य जातिके छोटे छोटे दल ही यहां आ घुसे थे, जो कि बदल कर धीरे-धीरे जादिम निवासियों जैसे हो गये । तो फिर जागे हमें यह कल्पना करनी पड़ती है कि, ऐसे विशाल प्रायद्वीपमें जाकर भी जहां कि सभ्य लोग रहते थे, जो कि बड़े बड़े नगरोंको बनानेवाले थे, दूर-दूर तक व्यापार करनेवाले थे, जो मानसिक तथा जारिमक संस्कृतिसे भी शून्य नहीं थे, उन पर वे जाक्रान्ता अपनी भाषा, धर्म, विचारों और रीतिरिवाजोंको थोप देनेमें समर्थ हो सके । ऐसा कोई चमत्कार तभी संभव हो सकता था, यदि जाक्रान्तानोंकी बहुत ही अधिक संगठित अपनी भाषा होती, रचनात्मक मनकी अधिक बड़ी शक्ति होती और अपेक्षया अधिक प्रबल धार्मिक विधि और भावना होती ।

और दो जातियोंके मिलानेकी कल्पनाको पुष्ट करनेके लिये भाषाके शब्दकी बात तो सदा विद्यमान थी ही । परन्तु इस विषयमें भी मेरे पहिलेके बने हुए विचार गढ़बढ़ और भ्रान्त निकले । क्योंकि तामिल शब्दोंकी परीक्षा करनेपर, जो कि यद्यपि देखनेमें संस्कृतके रूप और ढंगसे बहुत अधिक भिन्न प्रतीत होते थे, मैंने यह पाया कि वे शब्द या शब्द-परिवार जो कि विशुद्ध रूपसे तामिल ही समझे जाते थे, संस्कृत तथा इसकी दूरवर्ती बहिन लॅटिनके बीचमें और कभी-कभी ग्रीक तथा संस्कृतके बीचमें नये संबंधोंकी स्थापना करनेमें मेरा पथप्रदर्शन करते थे ।

कभी-कभी तामिल शब्द न केवल शब्दोंके परस्पर संबंधका पता देते थे बल्कि संबद्ध शब्दोंके परिवारमें किसी ऐसी कड़ीको भी सिद्ध कर देते थे जो कि मिल नहीं रही होती थी । और इस द्राविड भाषाके द्वारा ही मुझे पहिले-पहल जायन भाषाओंके नियमका जो कि मुझे जब सत्य नियम प्रतीत होता है, जायन भाषाओंके उत्पत्ति-बीजोंका, या यों कहना चाहिये कि, मानो इनकी गर्भविद्याका पता

मिला था । मैं अपनी जांचको पर्याप्त दूर तक नहीं ले जा सका जिससे कि कोई निश्चित परिणाम स्थापित कर सकता परन्तु यह मुझे निश्चित रूपसे प्रतीत होता है कि वे एक ही लुप्त जादिम भाषासे निकले हुए दो विभिन्न परिवार हैं । यदि ऐसा हो, तो द्राविड भारतमें जायन जाक्रमण होनेके विषयमें एकमात्र अवशिष्ट साक्षी यही रह जाती है कि वैदिक सूक्तोंमें इसके निर्देश पाये जाते हैं ।

इसलिये मेरी दोहरी दिक्कतपी थी, जिससे कि प्रेरित होकर मैंने पहिले-पहल मूल वेदको अपने हाथमें लिया, यद्यपि उस समय मेरा कोई ऐसा ह्वादा नहीं था कि मैं वेदका सूक्ष्म या गम्भीर अध्ययन करूंगा । मुझे यह देखनेमें अधिक समय नहीं लगा कि वेदमें कहे जानेवाले जायों और दस्युओंके बीचमें जातीय विभाग सूचक निर्देश तथा यह बतानेवाले निर्देश कि दस्यु और जादिम भारतनिवासी एक ही थे, जितनी कि मैंने कल्पना की हुई थी, उससे भी कहीं अधिक निःसार हैं ।

परन्तु इससे भी अधिक दिक्कतपीका विषय मेरे लिये यह था कि इन प्राचीन सूक्तोंके अन्दर उपेक्षित पड़े हुए जो गम्भीर आध्यात्मिक विचारोंका बड़ा भारी समुदाय है और जो अनुभूति है, उसका पता लगाना । और इस जंगकी महत्ता तब मेरी दृष्टिमें और भी बढ गयी जबकि पहिले तो, मैंने यह देखा कि वेदके मंत्र एक स्पष्ट और ठीक प्रकाशके साथ मेरी अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियोंको प्रकाशित करते हैं, जिनके लिये न तो योरोपियन अध्यात्म-विज्ञानमें, न ही योगकी या वेदान्तकी शिक्षानोंमें जहांतक मैं इनसे परिचित था, मुझे कोई पर्याप्त स्पष्टीकरण मिलता था । और दूसरे यह कि वे उपनिषदोंके उन बुंधले सद्भावों और विचारों पर प्रकाश डालते थे जिनका कि पहिले मैं कोई ठीक ठीक अर्थ नहीं कर पाता था, और इसके साथ ही इनसे पुराणोंके भी बहुतसे भागका एक नया जन्मपाथ पता लगता था ।

इस परिणामपर पहुंचनेमें, सौभाग्यवश मैंने जो साधनके साध्यको पहिले नहीं पडा था, उसने मेरी बहुत मदद की । क्योंकि मैं स्वतंत्र था कि वेदके बहुतसे सामान्य और बार बार आनेवाले शब्दोंको उनका जो स्वाभाविक आध्यात्मिक अर्थ है वह उन्हें दे सकूं, जैसे कि 'धो' का अर्थ

विचार या समझ, 'मनस्' का अर्थ मन, 'मति' का अर्थ विचार, अनुभव या मानसिक अवस्था, 'मनोषा' का अर्थ बुद्धि, 'ऋतम्' का अर्थ सत्य; और मैं स्वतन्त्र था कि शब्दोंको उनके अर्थकी वास्तविक प्रतिच्छाया दे सकूँ, 'कवि' को द्रष्टा की, 'मनोषी' को विचारक की, 'विप्र विप्रश्चित्' को प्रकाशित-मनस्क की, इसी प्रकारके और भी कई शब्दोंको, और मैं स्वतन्त्र था कि ऐसे शब्दोंका एक जाध्यात्मिक अर्थ— जिसे कि मेरे अधिक व्यापक अध्ययनने भी युक्तियुक्त ही प्रमाणित किया था— प्रस्तुत करनेका साहस करूँ जैसे कि 'दक्ष' का जिसका कि सायणके अनुसार 'बल' अर्थ है और 'श्रवस्' का जिसका सायणने धन, दौलत, जल या कीर्ति यह अर्थ किया है। वेदके विषयमें जाध्यात्मिक अर्थका सिद्धान्त इन शब्दोंका स्वाभाविक अर्थ ही स्वीकार करनेके हमारे अधिकार पर आधार रखता है।

सायणने 'धी' 'ऋतम्' आदि शब्दोंके बहुत ही परिवर्तनशील अर्थ किये हैं। 'ऋतम्' शब्दका, जिसे कि हम मनोवैज्ञानिक या जाध्यात्मिक व्याख्याकी लगभग कुञ्जी कह सकते हैं, सायणने कभी कभी 'सत्य', अधिकतर 'यज्ञ' और किसी किसी जगह 'जल' अर्थ किया है। जाध्यात्मिक व्याख्याके अनुसार निश्चित रूपसे इसका अर्थ सत्य होता है। 'धी' के सायणने 'विचार', 'स्तुति', 'कर्म' 'सोजन' आदि अनेक अर्थ किये हैं। जाध्यात्मिक व्याख्याके अनुसार नियत रूपसे इसका अर्थ विचार या समझ है। और यही बात वेदकी अन्य नियत संज्ञाओंके संबंधमें है।

इसके अतिरिक्त, सायणकी प्रवृत्ति यह है कि वह शब्दोंके अर्थोंकी छायाओंको और उनमें जो सूक्ष्म अन्तर होता है उसे बिल्कुल मिटा देता है और उनका अधिकसे अधिक स्थूल जो सामान्य अर्थ होता है वही कर देता है। सारेके सारे विशेषण जो कि किसी मानसिक क्रियाके चोतक हैं, उसके लिये एकमात्र 'बुद्धि' अर्थको देते हैं, सारेके सारे शब्द जो कि शक्तिके विभिन्न विचारोंके सूचक हैं— और वेद उनसे भरा पड़ा है— बलके स्थूल अर्थमें परिणत कर दिये गये हैं।

इसके विपरीत, वेदाध्ययनसे सुझपर तो इस बातकी

छाप पड़ी कि वेदके अर्थोंकी ठीक ठीक छायाको नियत करने तथा उन्हें सुरक्षित रखनेकी और विभिन्न शब्दोंके अपने ठीक ठीक सहचारी संबंध क्या हैं उन्हें निश्चित करनेकी बड़ी आरी महत्ता है, चाहे वे शब्द अपने सामान्य अभिप्रायमें परस्पर कितना ही निकट संबंध क्यों न रखते हों। सचमुच मैं नहीं समझ पाता कि हमें यह क्यों कल्पना कर लेनी चाहिये कि वैदिक ऋषि, काव्यात्मक शैलीमें सिद्धहस्त अन्य रचयिताओंके विसदृश, शब्दोंको अव्यवस्थित रूपसे और अविवेकपूर्वताके साथ प्रयुक्त करते थे, उनके ठीक ठीक सहचारी संबंधोंको बिना अनुभव किये ही और शब्दोंकी शृंखलामें उन्हें उनका ठीक ठीक और यथोचित बल बिना प्रदान किये ही।

इस नियमका अनुसरण करते-करते मैंने पाया कि शब्दों और वाक्य खंडोंके सरल, स्वाभाविक और सीधे अभिप्राय को बिना छोड़े ही, न केवल पृथक्-पृथक् ऋचाओंका बल्कि सम्पूर्ण संदर्भोंका एक असाधारण विशाल समुदाय तुरन्त ही बुद्धिगोचर हो गया, जिसने कि पूर्ण रूपसे वेदके सारे स्वरूपको ही बदल दिया।

क्योंकि तब यह धर्म पुस्तक वेद ऐसी प्रतीत होने लग गयी कि यह अत्यन्त बहुमूल्य विचार-रूपी सुवर्णकी एक स्थिर रेखाको अपने अंदर रखती है और जाध्यात्मिक अनुभूति इसके अंश अंशमें चमकती हुई प्रवाहित हो रही है, जो कि कहीं छोटी-छोटी रेखाओंमें, कहीं बड़े-बड़े समूहोंमें, इसके अधिकांश सूक्तोंमें दिखाई देती हैं। साथ ही उन शब्दोंके अतिरिक्त जो कि अपने स्पष्ट और सामान्य अर्थसे तुरन्त ही अपने प्रकरणोंको जाध्यात्मिक अर्थोंकी सुवर्णीय रंगत दे देते हैं, वेद अन्य भी ऐसे शब्दोंसे भरा पड़ा है जिनके लिये यह सम्भव है कि, वेदके सामान्य अभिप्रायके विषयमें हमारी जो भी धारणा हो उसीके अनुसार, चाहे तो उन्हें बाह्य और प्रकृतिवादी अर्थ दिया जा सके, चाहे एक आभ्यन्तर और जाध्यात्मिक अर्थ। उदाहरणार्थ, इस प्रकारके शब्द जैसे कि 'राये, रयि, राधस्, रत्न' केवल मात्र भौतिक समृद्धि या धनदौलतके वाचक भी हो सकते हैं और आन्तरिक ऐश्वर्य तथा समृद्धिके भी।

क्योंकि वे मानसिक जगत् और बाह्य जगत् दोनोंके लिये एकसे प्रयुक्त हो सकते हैं। 'धन, बाज, पोष' का

अर्थ बाह्य धनदौलत, समृद्धि और पुष्टि भी हो सकता है अथवा सभी प्रकारकी सम्पत्तियाँ चाहे वे आन्तरिक हों चाहे बाह्य, व्यक्तिके जीवनमें उनका बाहुल्य और उनकी वृद्धि। उपनिषद्में ऋग्वेदके एक उद्धरणकी व्याख्या करते हुए 'राये' को आध्यात्मिक सम्पत्तिके अर्थमें प्रयुक्त किया है, तो फिर मूल वेदमें इसका यह अर्थ क्यों नहीं हो सकता? 'वाज' बहुधा ऐसे सन्दर्भमें आता है जिसमें कि अन्य प्रत्येक शब्द आध्यात्मिक अभिप्राय रखता है, जहाँ कि भौतिक समृद्धिका उल्लेख समस्त एकरस विचारके जन्मरसंगतिका एक तीव्र बेसुरापन लादेगा। इसलिये सामान्य बुद्धिकी मांग है कि वेदमें इन शब्दोंके प्रयोगको आध्यात्मिक अभिप्राय देनेवाला ही स्वीकार करना चाहिये।

परन्तु यदि यह संगतिपूर्वक किया जा सके, तो इससे न केवल सम्पूर्ण ऋचाएं और संदर्भ, बल्कि सारे सारे सूक्त तुरन्त आध्यात्मिक रंगतसे रंग जाते हैं। एक शर्तपर वेदोंका यह आध्यात्मिक रंगमें रंगा जाना प्रायः पूर्ण होगा, एक भी शब्द या एक भी वाक्य खण्ड इससे प्रभावित हुए बिना नहीं बचेगा; वह शर्त यह है कि हमें वैदिक 'यज्ञ' को प्रतीक रूपमें स्वीकार करना चाहिये।

गीतामें हम पाते हैं कि 'यज्ञ' का प्रयोग उन सभी कर्मोंके प्रतीकके रूपमें किया गया है, चाहे वे अन्तर हों चाहे बाह्य, जो देवोंको या ब्रह्मको समर्पित किये जाते हैं। इस शब्दका यह प्रतीकात्मक प्रयोग क्या उत्तरकालीन दार्शनिक बुद्धिका पैदा किया हुआ है, अथवा यह यज्ञके वैदिक विचारमें पहिले अन्तर्निहित था? मैंने देखा कि स्वयं वेदमें ही ऐसे सूक्त हैं जिनमें कि 'यज्ञ' का अथवा बल्कि विचार खुले तौर पर प्रतीकात्मक है, और दूसरे कुछ सूक्तोंमें यह प्रतीकात्मकता अपने ऊपर पडे जावरणमें छे स्पष्ट दिखाई देती है। तब यह प्रश्न उठा कि क्या ये बादकी रचनाएँ थीं जो कि पुराने अंधविश्वासपूर्ण विधिविधानोंमेंसे एक प्रारम्भिक प्रतीकवादको विकसित करती थीं अथवा इसके विपरीत यह जबसर पाकर कहीं-कहीं किया गया स्पष्टतर कथन था, उस अर्थका जो कि अधिकांश सूक्तोंमें कम-अधिक सावधानीके साथ अलंकारके पदोंसे ढका हुआ रखा है।

यदि वेदमें आध्यात्मिक संदर्भ सतत रूपसे न पाये जाते

तो निःसन्देह पहिले स्पष्टीकरणको ही स्वीकार किया जाता। परन्तु इसके विपरीत, सारे सूक्त स्वभावतः एक आध्यात्मिक अर्थको लिये हुए हैं जिनमें कि एकसे दूसरे मन्त्रमें एक पूर्ण और प्रकाशमय संगति है, अस्पष्टता केवल वहाँ आती है जहाँ कि यज्ञका उल्लेख है या हविका अथवा कहीं-कहीं यज्ञ-संचालक पुरोहितका, जो कि या तो मनुष्य हो सकता था या देवता। यदि इन शब्दोंकी प्रतीक मानकर व्याख्या की जाती थी तो मैं हमेशा यह देखता था कि विचारकी शृंखला अधिक पूर्ण, अधिक प्रकाशमय, अधिक संगत हो जाती है और पूरे पूरे सूक्तका आशय उज्ज्वल रूपसे पूर्ण हो जाता है। इसलिये स्वस्थ समा-लोचनाके प्रत्येक नियमके द्वारा मैंने इसे न्यायोचित अनुभव किया कि मैं अपनी कल्पनाके अनुसार भागे चला चला, और इसमें वैदिक यज्ञके प्रतीकात्मक अभिप्रायको भी सम्मिलित कर दूँ।

तो भी यहींपर आध्यात्मिक व्याख्याकी सर्वप्रथम वास्तविक कठिनाई आकर उपस्थित हो जाती है। अबतक तो मैं एक पूर्ण रूपसे सीधी और स्वाभाविक व्याख्या पद्धतिसे चल रहा था जो कि शब्दों और वाक्योंके ऊपरी अर्थपर निर्भर थी। पर अब मैं एक ऐसे तत्त्वपर आ गया जिसमें कि, एक दृष्टिसे ऊपरी अर्थको अतिक्रमण कर जाना पड़ता था, और यह ऐसी पद्धति थी जिसमें कि प्रत्येक समालोचक और बिल्कुल निर्दोषता चाहनेवाला मन अवश्य अपने आपको निरन्तर सन्देहोंसे आक्रान्त पावेगा। न ही कोई, चाहे वह कितनी भी सावधानी रखे, इस तरह सदा इस बातमें निश्चित हो सकता है कि उसने ठीक सूत्रको ही पकड़ा है और उसे ठीक व्याख्या ही सूची है।

वैदिक यज्ञके अन्तर्गत-एक क्षणके लिये देवता और मन्त्रको छोड़ दें तो-तीन जंग हैं, हवि देनेवाले, हवि और हविके फल। यदि 'यज्ञ' एक कर्म है जो कि देवताओंको समर्पित किया जाता है तो 'यजमान' को, हवि देनेवालेको मैं यह समझे बिना नहीं रह सकता कि वह उस कर्मका कर्ता है। 'यज्ञ' का अभिप्राय है कर्म, वे कर्म आन्तरिक हों या बाह्य, इसलिये यजमान होना चाहिये आत्मा अथवा वह व्यक्तित्व जो कि कर्ता है। परन्तु साथ ही यज्ञ-संचालक, पुरोहित भी होते थे, होता, ऋत्विज, पुरोहित, ब्रह्मा अध्वर्यु आदि।

इस प्रतीकवादमें उनका कौनसा भाग था ? क्योंकि एक बार यदि यज्ञके लिये हम प्रतीकात्मक जमिप्रायकी कल्पना कर लेते हैं तो इस यज्ञ-विधिके प्रत्येक अंगका हमें प्रतीकात्मक मूल्य कल्पित करना चाहिये । मैंने पाया कि देवताओंके विषयमें सतत रूपसे यह कहा गया है कि वे यज्ञके पुरोहित हैं और बहुतसे सन्दर्भोंमें तो प्रकट रूपसे यह एक जमानुषी सत्ता या शक्ति है जो कि यज्ञका अधिष्ठान करती है ।

मैंने वह भी देखा कि सारे वेदमें हमारे व्यक्तित्वको बनानेवाले तत्त्व स्वयं सतत रूपसे सजीव शरीरधारी मान कर वर्णन किये गये हैं । मुझे इस नियमको केवल व्यत्याससे प्रयुक्त करना था और यह कल्पना करनी थी कि बाह्य जलंकारमें जो पुरोहितका व्यक्ति है वह आभ्यन्तर क्रिया-जोंमें जालंकारिक रूपसे एक जमानुषी सत्ता या शक्तिको जगवा हमारे व्यक्तित्वके किसी तत्त्वको सूचित करता है । फिर अवशिष्ट रह गया पुरोहित संबंधी भिन्न-भिन्न कार्योंके लिये जाध्यात्मिक जमिप्राय नियत करना । यहां मैंने पाया कि वेद स्वयं अपने भाषा संबंधी निर्देशों और ढठ उक्तियोंके द्वारा मूलसूत्रको पकड़ा रहा है, जैसे कि 'पुरोहित' शब्दका प्रतिनिधिके भावके साथ अपने जसमस्त रूपमें, पुरो-हित 'जागे रखा हुआ' इस अर्थमें प्रयुक्त होना और प्रायः इससे जमि देवताका संकेत किया जाना, जो जमिकी मानवतामें उस 'दिव्य संकल्प' या 'दिव्य शक्ति' का प्रतीक है जो यज्ञ रूपसे किये जानेवाले सब पवित्र कर्मोंमें क्रियाको ग्रहण करनेवाला होता है ।

हवियोंको समझ सकना और भी कठिन था । चाहे सोम-सुरा भी जिन प्रकरणोंमें इसका वर्णन है उनके द्वारा, अपने वर्णित उपयोग और प्रभावके द्वारा और अपने पर्यायवाची शब्दोंसे मिलनेवाले भाषा-विज्ञान संबंधी निर्देशके द्वारा स्वयं अपनी व्याख्या कर सकती थी पर यज्ञके घी, 'घृतम्' का क्या जमिप्राय लिया जाना सम्भव था ? और तो भी वेदमें यह शब्द जिस रूपमें प्रयुक्त हुआ है वह इसी पर बल देता था कि इसकी प्रतीकात्मक व्याख्या ही होनी चाहिये ।

उदाहरणार्थ- अंतरिक्षसे बृंद रूपमें गिरनेवाले घृतका या इन्द्रके घोड़ोंमेंसे क्षरित होनेवाले जगवा मनसे क्षरित होने-

वाले घृतका क्या अर्थ हो सकता था ? स्पष्ट ही एक विलकुल असंगत और व्यर्थकी बात होती, यदि घी अर्थको देनेवाले 'घृत' शब्दका इसके जतिरिक्त कोई और जमिप्राय होता कि यह किसी बातके लिये एक ऐसा प्रतीक है जिसका कि प्रयोग बहुत शिथिलताके साथ किया गया है । यहां तक कि विचारकको बहुधा अपने मनमें इसके बाह्य अर्थको सर्वांशमें या आंशिक रूपसे जलज रख देना चाहिये । निःसन्देह यह भी सम्भव था कि आसानीके साथ इन शब्दोंके अर्थको प्रसंगानुसार बदल दिया जाय, 'घृत' को कहीं घी और पानीके अर्थमें ले लिया जाय तथा 'मनस्' का अर्थ कहीं मन कहीं जग या जपूष कर लिया जाय ।

परन्तु मुझे पता लगा कि 'घृत' सतत रूपसे विचार या मनके साथ प्रयुक्त हुआ है, कि वेदमें 'घौ' मनका प्रतीक है, कि 'इन्द्र' प्रकाशयुक्त मनोवृत्तिका प्रतिनिधि है और उसके दो घोड़े उस मनोवृत्तिकी द्विविध शक्तियां हैं और मैंने यहां तक देखा कि वेद कहीं कहीं साफ तौरसे बुद्धि (धिषणा) की शोधित घृतके रूपमें देवोंके लिये हवि देनेको कहता है, " घृतं न पूतं धिषणा " (३.१२.१) 'घृत' शब्दकी भाषाविज्ञानकी दृष्टिसे जो व्याख्याएं की जाती हैं, उनमें भी इसका एक अर्थ अत्यधिक या उष्ण चमक है । इन सब निर्देशोंकी अनुकूलताके आधार पर ही मैंने अनुभव किया कि 'घृत' के प्रतीककी यदि मैं कोई जाध्यात्मिक व्याख्या करता हूं, तो मैं ठीक रास्ते पर हूं । और इसी नियम तथा इसी प्रणालीको मैंने यज्ञके दूसरे जंगोंमें भी प्रयुक्त करने योग्य पाया ।

हविके फल देखनेमें विशुद्ध रूपसे भौतिक प्रतीत होते थे- गौएं, घोड़े, सोना, जपल्य, मनुष्य, शारीरिक बल, युद्धमें विजय । यहां कठिनाई और भी दुस्तर हो गई । पर यह मुझे पहिले ही दीख चुका था कि वेदका 'गौ' बहुत ही पहेलीदार प्राणी है, यह किसी पार्थिव गोशालासे नहीं आया है । 'गौ' शब्दके दोनों अर्थ हैं, गाय और प्रकाश और कुछ एक सन्दर्भोंमें तो, चाहे हम गायके अर्थको अपने सामने रखें भी तो भी स्पष्ट ही इसका अर्थ प्रकाश ही होता है । यह पर्याप्त स्पष्ट हो जाता है, जब कि हम सूर्यकी गौजों-होमर (Homer)

कविकी हीलियस की गौर्जो-जौर उषाकी गौर्जो पर विचार करते हैं ।

आध्यात्मिक रूपमें, भौतिक प्रकाश ज्ञानके विशेषकर दिव्य ज्ञानके-प्रतीकके रूपमें अच्छी तरह प्रयुक्त किया जा सकता है । परन्तु यह तो केवल संभावना मात्र थी, इसकी परीक्षा और प्रमाणसे स्थापना कैसे होती ? मैंने पाया कि ऐसे सन्दर्भ पाते हैं, जिनमें कि जास-पासका सारा ही प्रकरण अध्यात्मपरक है और केवल 'गौ' का प्रतीक ही है जो कि अपने आडियल भौतिक जगत्के साथ बीचमें आकर बाधा डालता है । इन्द्रका आह्वान सुन्दर (पूर्ण) रूपोंके निर्माता 'सुरुपकृन्तु' के तौर पर किया गया है कि वह जाकर सोमरसको पिये; उसे पीकर वह ज्ञानन्दमें भर जाता है और गौर्जोको देनेवाला (गोदा) हो जाता है, तब हम उसके समीपतम या चरम सुविचारोंको प्राप्त कर सकते हैं, तब हम उनसे प्रश्न करते हैं और उसका स्पष्ट विवेक हमें हमारे सर्वोच्च कल्याणको प्राप्त कराता है । ●

यह स्पष्ट है कि इस प्रकारके सन्दर्भोंमें 'गौ' भौतिक गायें नहीं हो सकती, ना ही 'भौतिक प्रकाशको देनेवाला' यह जगत् प्रकरणमें किसी अभिप्रायको लाता है । कमसे कम एक उदाहरण मेरे सामने ऐसा आया जिसने मेरे मनमें यह निश्चित रूपसे स्थापित कर दिया कि वहाँ वैदिक गौ आध्यात्मिक प्रतीक ही है । तब मैंने इसे उन दूसरे सन्दर्भोंमें प्रयुक्त किया जहाँ कि 'गौ' शब्द आता था और सर्वदा मैंने यही पाया कि परिणाम यह होता था कि इससे प्रकरणका जगत् अच्छेसे अच्छा हो जाता था और उसमें अधिकसे अधिक संभवनीय संगति आ जाती थी ।

गाय और घोडा, 'गौ' और 'जश्व' निरन्तर इकट्ठे पाते हैं । उषाका वर्णन इस रूपमें हुआ है कि वह 'गोमती जश्ववती' है, उषा यज्ञकर्ता (यजमान) को बोले और गौएं देती हैं । प्राकृतिक उषाको लें, तो 'गोमती' का जगत् है प्रकाशकी किरणोंसे युक्त या प्रकाशकी किरणोंको लाती हुई और यह मानवीय मनमें होनेवाली प्रकाशकी उषाके लिये एक रूपक है । इसलिये 'जश्ववती' विशेषण भी एक मात्र भौतिक घोडोंका

निर्देश करनेवाला नहीं हो सकता, साथमें इसका कोई आध्यात्मिक जगत् भी अवश्य होना चाहिये । वैदिक 'जश्व' का अध्ययन करने पर मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि 'गौ' और 'जश्व' वहाँ प्रकाश और शक्तिके, ज्ञान और बलके दो सहचर विचारोंके प्रतिनिधि हैं, जो कि वैदिक और वैदान्तिक मनके लिये सत्ताकी सभी प्रगतियोंके द्विविध या युगलरूप होते थे ।

इसलिये यह स्पष्ट हो गया कि वैदिक यज्ञके दो मुख्य फल गौर्जोकी संपत्ति और घोडोंकी संपत्ति, क्रमशः मानसिक प्रकाशकी समृद्धि और जीवन शक्तिकी बहुलताके प्रतीक हैं । इससे परिणाम निकला कि वैदिक कर्म (यज्ञ) के इन दो मुख्य फलोंके साथ निरन्तर संबद्ध जो दूसरे फल हैं उनकी भी अवश्यमेव आध्यात्मिक व्याख्या हो सकती चाहिये । अवशिष्ट केवल यह रह गया कि उन सबका ठीक-ठीक अभिप्राय नियत किया जाय ।

वैदिक प्रतीकवादका एक दूसरा जगत्वाचक जगत् हैं लोगोंका संस्थान और देवताओंके व्यापार । लोकोंके प्रतीकवादका सूत्र सुखे 'व्याहृतियों' के वैदिक विचारमें " जोश्म भूर्भुवः स्वः " इस मंत्रके तीन प्रतीकात्मक शब्दोंमें और चौथी व्याहृति 'महः' का आध्यात्मिक जगत् रखनेवाले 'ऋतम्' शब्दका जो संबंध है, उसमें मिल गया । ऋषि विश्वके तीन विभागोंका वर्णन करते हैं, पृथिवी, अंतरिक्ष या मध्यस्थान और द्यौ, परन्तु साथ ही एक आध्यात्मिक बड़ा द्यौ (बृहत् द्यौ) भी है, जिसे विस्तृत लोक (बृहत्) भी कहा गया है और कहीं कहीं जिसे महान् जल, 'महो जलः' के रूपमें भी वर्णित किया है ।

फिर इस 'बृहत्' का 'ऋतम् बृहत्' उस रूपमें जगत्वा 'सत्यं ऋतम् बृहत्' ÷ इन तीन शब्दोंकी परिभाषाके रूपमें वर्णन मिलता है और क्योंकि तीन लोक प्रारंभिक तीन व्याहृतियोंसे सूचित होते हैं, इसलिये 'बृहत्' के और 'ऋत' के इस चौथे लोकका संबंध उपनिषद्में उल्लिखित चौथी व्याहृति 'महः' से होना चाहिये । पौराणिक सूत्रमें ये चार तीन अन्य- 'जनः तपः'

● यह ऋक् मण्डल १ सूक्त ४ के आधार पर है । — अनुवादक ।

÷ सत्यम् बृहत् ऋतम् । जगत् १२।१।१

‘सत्यम्’ से मिलकर पूर्ण होते हैं, जो तीन कि हिन्दु विश्व विज्ञानके तीन उच्च लोक हैं। वेदमें भी हमें तीन सर्वोच्च लोकोंका उल्लेख मिलता है, यद्यपि उनके नाम नहीं दिये गये हैं।

परन्तु वैदान्तिक और पौराणिक सम्प्रदायमें ये सात लोक सात जाध्यात्मिक तत्त्वों या सत्ताके सात रूपों-सत्, चित्, जानन्द, विज्ञान, मनः, प्राण, जल-को सूचित करते हैं। अब यह मध्यका लोक विज्ञान, जो कि ‘महः’ का लोक है, महान् लोक है, वस्तुओंका सत्य है और यह तथा वैदिक ‘ऋतम्’ जो कि ‘वृहत्’ का लोक है, दोनों एक ही हैं, और जहाँ कि पौराणिक सम्प्रदायमें ‘महः’ के बाद यदि नीचेसे ऊपरका क्रम लें तो, ‘जनः’ (जो कि ‘जानन्द’ का दिव्य सुखका लोक है) जाता है, वहाँ वेदमें भी ‘ऋतम्’ अर्थात् सत्य ऊपरकी ओर ‘मयः’ तक, सुख तक ले जाता है।

इसलिये हम उचित रूपसे इस निश्चय पर पहुँच सकते हैं कि (पौराणिक तथा वैदिक) ये दोनों सम्प्रदाय इस विषयमें एक हैं और दोनोंका आधार इस एक विचार पर है कि जन्दर अपनी चेतनाके सात तत्व हैं जो कि बाहर सात लोकोंके रूपमें अपने आपको प्रकट करते हैं। इस सिद्धान्त पर मैं वैदिक लोकोंकी तदनुसारी चेतनाके जाध्यात्मिक स्तरोंके साथ एकता स्थापित कर सका और तब सारा ही वैदिक संस्थान मेरे मनमें स्पष्ट हो गया।

अब इतना सिद्ध हो चुका, तो जो बाकी था वह स्व-भावतः और अनिवार्य रूपसे होने लगा। मैं यह पहिले ही देख चुका था कि वैदिक ऋषियोंका केन्द्रीभूत विचार था कि भिष्याका सत्यसे, विभक्त तथा सीमाबद्ध जीवनका सम्पूर्णता तथा जलीमतासे परिवर्तन करके, मानवीय जात्माको मृत्युकी अवस्थासे निकाल कर जमरताकी अवस्था तक पहुँचा देना। मृत्यु है मन और प्राणसहित शरीरकी मर्त्य अवस्था और जमरता है जलीम सत्ता, चेतना और जानन्दकी अवस्था। मनुष्य छौ और पृथ्वी, मन और शरीर इन दो लोकों, ‘रोदसी’ से ऊपर उठ कर सत्यकी जलीमतामें ‘महः’ में और इस प्रकार दिव्य सुखमें पहुँच जाता है। यही वह ‘महा-पथ’ है जिसे ऋषियोंने सोजा था।

देवोंके विषयमें मैंने यह वर्णन पाया कि वे प्रकाशसे उत्पन्न हुए हैं, ‘अदिति’ के अनन्तताके पुत्र हैं, और बिना जपवादके उनका इस प्रकार वर्णन जाता है कि वे मनुष्यकी उन्नति करते हैं, इसे प्रकाश देते हैं, उस पर पूर्ण जलोंकी, छौके ऐश्वर्यकी वर्षा करते हैं, उसके जन्दर सत्यकी वृद्धि करते हैं, दिव्य लोकोंका निर्माण करते हैं, सब आक्रमणोंसे बचाकर उसे महान् लक्ष्य तक, जखण्ड समृद्धि तक, पूर्ण सुख तक पहुँचाते हैं। उनके पृथक्-पृथक् व्यापार उनकी क्रियाओंसे, उनके विशेषणोंसे, उनसे सम्बद्ध कथानकोंका जो अध्यात्मपरक जाशय होता था उससे उपनिषदों और पुराणोंके निर्देशोंसे तथा ग्रीक नायाओं द्वारा कभी-कभी पढ़नेवाले आंशिक प्रकाशोंसे निकल जाते थे।

दूसरी ओर दैत्य जो कि उनके विरोधी हैं, सबके सब विभाग तथा सीमाकी शक्तियाँ हैं, वे जैसा कि उनके नाम सूचित करते हैं, जाच्छादक हैं, विदारक हैं, हडप लेनेवाले हैं, धेरनेवाले हैं, द्वेष पैदा करनेवाले हैं, प्रतिबन्धक हैं, वे ऐसी शक्तियाँ हैं जो कि जीवनकी स्वतंत्र तथा एकीभूत सम्पूर्णताके विरुद्ध कार्य करती हैं। ये वृत्र, पणि, जत्रि, राक्षस, शम्बर, बल, नमुचि कोई द्राविड राजा और देवता नहीं हैं, जैसा कि आधुनिक मन अपनी जतिको पहुँची हुई ऐतिहासिक दृष्टिसे चाहता है कि वे हों, वे एक अधिक प्राचीन भावके द्योतक हैं, जो कि धार्मिक तथा नैतिक ही विचारों कृत्योंमें मुख्यतया व्याप्त रहनेवाले हमारे पूर्व पितरोंके लिये अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त था।

वे उच्चतर अद्वी तथा निम्नतर इच्छाकी शक्तियोंके बीचमें होनेवाले संघर्षके द्योतक हैं और ऋग्वेदका यह विचार तथा पुण्य और पापका इसी प्रकारका विरोध जो कि अपेक्षाकृत कम जाध्यात्मिक सूक्ष्मताके साथ तथा अधिक नैतिक स्पष्टताके साथ पारसियोंके-हमारे इन प्राचीन पदोसियों और सजातीय बन्धुओंके-धर्म शास्त्रोंमें दूसरे प्रकारसे प्रकट किया गया है। सम्भवतः एक ही आर्य-संस्कृतिके मौलिक शिक्षणसे प्रादुर्भूत हुआ था।

अन्तमें मैंने देखा कि वेदका नियमित प्रतीकवाद बढकर कथानकोंमें भी पहुँचा हुआ है जिनमें कि देवोंका तथा उन देवोंके प्राचीन ऋषियोंके साथ संबंधका वर्णन है। इन

गाथाओंमेंसे यदि सबका नहीं तो कुछका मूल तो, इसकी पूर्ण संभावना है कि, प्रकृतिवादी तथा नक्षत्र विद्या संबंधी रहा हो, पर यदि ऐसा रहा हो तो उनके प्रारम्भिक अर्थकी आध्यात्मिक प्रतीकवादके द्वारा पूर्ति की गयी थी।

एक बार यदि वैदिक प्रतीकोंका अभिप्राय ज्ञात हो जाय तो इन कथानकोंका आध्यात्मिक अर्थ स्पष्ट तथा अनिवार्य हो जाता है। वेदका प्रत्येक तत्व उसके दूसरे तत्वके साथ अपृथक्करणीय रूपसे गुंथा हुआ है और इन रचनाओंका स्वरूप ही हमें इसके लिये बाध्य करता है कि हमने एक बार व्याख्याके जिस नियमको स्वीकार कर लिया है उसे हम अधिकसे अधिक युक्तिसंगत दूरीतक ले जाय। उनकी सामग्रियां बड़ी चतुराईके साथ दृढ़ हाथोंके द्वारा भिलाकर ठीक की गई हैं और उन पर हमारे काम करनेमें यदि कोई असंगति बर्ती जाती है तो उससे उनके अभिप्रायका और उनकी सुसम्बद्ध विचार श्रृंखलाका सारा ताना-बाना ही टूट जाता है।

इस प्रकार वेद, मानों अपनी प्राचीन ऋचाओंमेंसे अपने आपको प्रकट करता हुआ, मेरे मनके सामने इस रूपमें निकल आया कि यह साराका सारा ही एक महान् और प्राचीन धर्मकी जो कि पहिलेसे ही एक गम्भीर आध्यात्मिक शिक्षणसे सुसज्जित था, धर्म पुस्तक है, ऐसी धर्म पुस्तक नहीं जो कि गड़बड़ विचारोंसे भरी हो या उसकी प्रतिपाद्य सामग्री आदिम हो, यह भी नहीं कि वह कोई परस्पर विरुद्ध तथा जंगली तत्वोंकी खिचड़ी हो, बल्कि ऐसी धर्म पुस्तक है जो अपने लक्ष्य और अपने अभिप्रायमें पूर्ण है तथा अपने आपसे अभिज्ञ है; यह अवश्य है कि यह एक दूसरे और भौतिक अर्थके आवरणसे ढकी हुई है, जो आवरण कि कहीं घना है और कहीं स्पष्ट है, परन्तु तो भी यह क्षण सरके लिये भी अपने उच्च आध्यात्मिक लक्ष्य तथा प्रवृत्तिकी दृष्टिको जोखल नहीं होने देती है।

पुरुष-सूक्त

अर्थ, भावार्थ और स्पष्टीकरण

इसमें ऋग्वेद, वाजसनेयी यजुर्वेद, तैत्तिरीय सामवेद और अथर्ववेद इनमेंके सभी सूक्त देकर मन्त्रोंकी चरणसूची भी दी गई है।

(१) विश्वव्यापी विराट् पुरुष, (२) पृथ्वीपर सर्वत्र फैला हुआ 'मानवसमाजरूपी पुरुष' अथवा 'राष्ट्रपुरुष' और (३) 'मानव व्यक्तिरूप पुरुष' इनका आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक वर्णनके सम्बन्धसे सृष्टिका निर्माण, यज्ञीय जीवन, वेदोंका प्रकटीकरण, यज्ञचक्र परिवर्तन, परमात्मा-पुरुष और प्रकृति पदार्थोंकी उत्पत्ति इत्यादि विषयोंका भी विचार इस पुस्तकमें करके श्रीमद्-भागवतके पुरुषसूक्तका भी अनुवाद दिया है।

(१) आप पुरुषसूक्त का पाठ रोज करते हैं परन्तु उसका अर्थ व गूढार्थ का ज्ञान न होनेसे मानवधर्मके श्रेष्ठ ज्ञानसे वञ्चित रहते हैं। जीव-जगत् और जगन्नाथ इसकी ठीक कल्पना देनेवाले इस सूक्तका केवल पाठ न करते हुए मण्डलके इस पुरुषसूक्तकी सहायतासे अपना जीवन बनायें और अपना जीवन उन्नत तथा विश्वव्यापी कीजिये !

मन्त्री— स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' [जि. सूरत]

वैदिक अग्नि

श्री अरविन्द

★

जसि वेदमें हमेशा शक्ति और प्रकाशके द्विविध रूपमें जाता है। यह वह दिव्य शक्ति है जो लोकोंका निर्माण करती है, एक शक्ति है जो सर्वदा पूर्ण ज्ञानके साथ क्रिया करती है, क्योंकि यह 'जातवेदस्' है, सब जन्मोंको जाननेवाली है, 'विश्वानि वयुनानि विद्वान्' यह सब व्यक्त रूपों या घटनाओंको जानती है अथवा दिव्य बुद्धिके सब रूपों या घटनाओंको जानती है अथवा दिव्य बुद्धिसे सब रूपों और व्यापारोंसे वह युक्त है। इसके अतिरिक्त, यह बार-बार कहा गया है कि जसिको देवोंने मर्त्यमें जसृत् रूपसे स्थापित किया है, मनुष्यमें दिव्य शक्तिके रूपमें उस पूर्ण करनेवाली, सिद्ध करनेवाली शक्तिके रूपमें रखा है जिसके द्वारा वे देवता उस मनुष्यके अंदर अपना कार्य करते हैं। वह कार्य है जिसका कि प्रतीक यज्ञको बनाया गया है।

तो आध्यात्मिक रूपसे जसिका अर्थ हम दिव्य संकल्प ले सकते हैं, वह दिव्य संकल्प जो पूर्ण रूपसे दिव्य बुद्धिके द्वारा प्रेरित होता है और जसलमें जो इस बुद्धिके साथ एक है, जो वह शक्ति है जिसके द्वारा सत्य चेतना क्रिया करती है या प्रभाव डालती है। 'कविक्रतु' शब्दका स्पष्ट आशय है, वह जिसका क्रियाशील संकल्प या प्रभावक शक्ति टूटती है, अर्थात् जो उस ज्ञानके साथ कार्य करता है जो सत्य चेतनासे जानेवाला ज्ञान है और जिसमें कोई भ्रान्ति या गलती नहीं है। जाने जो विशेषण आये हैं वे इस व्याख्याको और भी पृष्ट करते हैं। जसि, सत्य है, अपनी सत्तामें सच्चा है; अपने निजी सत्य पर और वस्तु-ओंके सारभूत सत्य पर जो इसका पूर्ण अधिकार है उसके कारणसे इसमें यह सामर्थ्य है वह इस सत्यका शक्तिकी सब क्रियाओं और गतियोंमें पूर्णताके साथ उपयोग कर

सकता है। इसके पास दोनों हैं, 'सत्यम्' और 'ऋतम्' इसके अतिरिक्त वह 'चित्रश्रवस्तमः' है; 'ऋतम्' से उसमें अत्यधिक प्रकाशमय और विविध जन्तःप्रेरणा-ओंकी पूर्णता जाती है, जो उसे पूर्ण कार्य करनेकी क्षमता प्रदान करती है। क्योंकि ये सब विशेषण उस जसिके हैं जो 'होता' है, यज्ञका पुरोहित है, वह है जो हविः प्रदानका कर्त्ता है। इसलिये यज्ञके प्रतीकसे सूचित होने-वाले कार्य (कर्म या अपस्) में सत्यका प्रयोग करनेकी उसकी शक्ति ही है जो कि जसिको मनुष्य द्वारा यज्ञमें आहुत किये जानेका पात्र बनाती है। बाह्य यज्ञोंमें यज्ञीय जसिकी जो महत्ता है तदनु रूप ही आभ्यंतर यज्ञमें इस एकीभूत ज्योति और शक्तिके आंतरिक बलकी महत्ता है, उस आभ्यंतर यज्ञमें जिसके द्वारा मर्त्य और जमर्त्यमें परस्पर संसर्ग और मर्त्य और जमर्त्यमें एक दूसरेके साथ आदान-प्रदान होता है। अन्य स्थलोंमें ऐसा वर्णन बहुतायतके साथ पाया जाता है कि 'जसि' दूत है। उस संसर्ग और आदान-प्रदानका माध्यम है।

तो हम देखते हैं कि किस योग्यतावाले जसिको यज्ञके लिये पुकारा गया है, 'वह देव अन्य देवोंके साथ आये'। 'देवो देवेभिः' इस पुनरुक्तिके द्वारा जो दिव्यताके विचार पर विशेष बल दिया गया है यह बिस्फुल्ल साफ समझमें आने लगता है जब कि हम जसिके इस नियत वर्णनको स्मरण करते हैं कि, जसि जो मनुष्योंमें रहनेवाला देव है, मर्त्योंमें जमर्त्य है, दिव्य अतिथि है। इसे हम पूर्ण आध्यात्मिक रंग दे सकते हैं, यदि यह अनुवाद करें, 'वह दिव्य शक्ति दिव्य शक्तियोंके साथ आये,।' क्योंकि वेदा-यंकी बाह्य दृष्टिमें देवताएं मौक्तिक प्रकृतिकी सार्वत्रिक शक्तियां हैं जिन्हें अपना पृथक्-पृथक् व्यक्तित्व प्राप्त है,

तो किसी भी आन्तरिक दृष्टिमें ये देवताएं अवश्य ही प्रकृतिकी वे सार्वत्रिक शक्तियां, संकल्प, मन आदि होनी चाहिये जिन द्वारा प्रकृति हमारे जन्मदरकी हलचलोंमें काम करती है ।

परन्तु वेदमें इन शक्तियोंकी साधारण मनः सीमित या मानवीय क्रिया, ' मनुष्यवत् ' में और इनकी दिव्य क्रिया में सर्वदा भेद किया गया है । यह कल्पना की गयी है कि मनुष्य देवताओंके प्रति अपने आन्तरिक यज्ञमें अपनी मानसिक क्रियाओंका सही उपयोग करे तो उन्हें वह उनके सचे जर्थात् दिव्य रूपमें रूपान्तरित कर सकता है, मर्त्य जन्म बन सकता है । इस प्रकार ऋभुगण जो कि पहले मानव सत्ताएं थीं, या जो मानव शक्तियोंके द्योतक थे, कर्मकी पूर्णताके द्वारा— ' सृष्ट्यया ' ' स्वप्नया ' दिव्य और जन्म शक्तियां बन गए । यह मानवका दिव्यको सतत आत्म-समर्पण और दिव्यका मानवके जन्म सतत अवतरण है जो कि यज्ञके प्रतीकसे प्रकट किया गया प्रतीत होता है ।

इस जन्मरताकी अवस्थाको जो इस प्रकार प्राप्त होती है ज्ञानन्द और परम सुखकी अवस्था समझा गया है जिसका आधार एक पूर्ण सत्यानुभव और सत्याचरण, ' सत्यम् ' और ' ऋतम् ' है । मैं समझता हूं इससे जगती ऋचाको हमें जवश्य इसी जर्थात् लेना चाहिये । ' वह भलाई (सुख) जो तू हवि देनेवालेके लिये करेगा, वही तेरा वह सत्य है, हे जग्ने । ' दूसरे शब्दोंमें, इस सत्यका (जो इस जगत्का स्वभाव है) सार है जन्मसे सुक्ति, पूर्ण भद्र और सुखकी अवस्था जो ' ऋतम् ' के जन्म रहती है और जिसका मर्त्यमें सृजन होना निश्चित है, जब कि वह मर्त्य जगत्को दिव्य होता बनाकर उसकी क्रिया द्वारा यज्ञमें हवि देता है । ' भद्रम् ' का जर्थात् है कोई वस्तु जो भलाई, शिव, सुखमय हो, और इस शब्दको अपने आपमें कोई गर्भीर जर्थात् देनेकी आवश्यकता नहीं है । परन्तु वेदमें हम इसे ' ऋतम् ' की तरह एक विशेष जर्थात् प्रयुक्त हुआ पाते हैं ।

एक सूक्त (५-८२) में इसका इस रूपमें वर्णन किया गया है कि, यह बुरे स्वप्न (दुःस्वप्नम्) का ' जन्म '

सामवेद-भाष्य

सामवेद भाष्यकार श्री स्वामी भगवदाचार्यमें महाराज ।

' सामसंस्कार भाष्य ' नामसे यह सामवेदका उत्तम भाष्य संस्कृतमें तथा हिंदीमें है '

प्रथम आग मूल्य ८) रु.

द्वितीय आग मूल्य ८) रु.

डाक व्यय पृथक् है । जति शीघ्र मंगवाइये ।

मंत्री— स्वाध्याय मंडल,

पोस्ट— स्वाध्याय मंडल पारडी,

पारडी (जि. सूरत)

की मिथ्या चेतनाका और ' दुरितम् ' का, मिथ्या आचरण का विरोधी है, + जिसका अभिप्राय होता है कि यह सब प्रकारके पाप और कष्टका विरोधी है । ' भद्रम् ' × इसलिये ' सुवितम् ' का, सत्य आचरणका समानार्थक है, जिसका जर्थात् है वह सब भलाई और सुख कल्याण जो सत्यकी, ' ऋतम् ' की अवस्थासे संबंध रखता है । यह ' मयस् ' है, सुख कल्याण है, और देवताओंको जो कि सत्य चेतनाका प्रतिनिधित्व करते हैं, ' मयोभुवः ' कहा गया है जर्थात् वे जो सुख कल्याण लाते हैं या जो अपनी सत्तामें सुख कल्याण रखते हैं । इस प्रकार वेदका प्रत्येक आग यदि यह अच्छी तरहसे समझमें आ गया है, तो प्रत्येक दूसरे आग पर प्रकाश डालता है । इसमें परस्पर असंगति हमें तभी दीखती है जब इन पर पड़े हुए आवरणके कारण हम भटक जाते हैं ।

जगती ऋचामें यह प्रतीत होता है कि फलोत्पादक यज्ञकी शर्त बतायी गयी है । वह है दिन-प्रतिदिन, रातमें प्रकाशमें, मानवके जन्म उसके विचारका सतत रहना, उस दिव्य संकल्प और बुद्धिके प्रति जधीनता, पूजा और आत्म-

+ प्रजावत् सावीः सौभाग्यम् । परा दुःस्वप्नं सुव ॥ (ऋ. ५।१२।४)

× दुरितानि परासुव । यद् भद्रं तच्च जा सुव ॥ (ऋ. ५।८२।५)

समर्पणके साथ जिसका कि प्रतिनिधि अग्नि है। रात और दिन, 'नक्तोषसा,' भी वेदके अन्य सब देवोंकी तरह प्रतीकरूप ही हैं और जाशय यह प्रतीत होता है कि चेतनाकी सभी अवस्थाओंमें, चाहे वे प्रकाशमय हों चाहे धुंधली समस्त क्रियाओंकी दिव्य निमन्त्रणके प्रति सतत वशवर्तिता और अनुरूपता होनी चाहिये।

क्योंकि चाहे दिन हो चाहे रात, अग्नि यज्ञोंमें प्रदीप्त होता है, वह मनुष्यके अंदर सत्यका, 'ऋतम्' का रक्षक है और बाधकारकी शक्तियोंसे इसकी रक्षा करता है, वह इस सत्यका सतत प्रकाश है जो मनकी धुंधली और पर्याक्रान्त दृष्टाओंमें भी प्रदीप्त रहता है। ये विचार जो इस प्रकार जाठवीं ऋचासे संक्षेपसे दर्शाये गये हैं, ऋग्वेदमें अग्निके जितने सूक्त हैं उन सबमें स्थिर रूपसे पाये जाते हैं।

अन्तमें अग्निके विषयमें यह कहा गया है कि वह अपने घरमें वृद्धिको प्राप्त होता है। जब हम अधिक देर तक इस व्याख्यासे सन्तुष्ट नहीं रह सकते कि अग्निका अपना घर वैदिक गृहस्थाश्रमी 'अग्नि-गृह' है। हमें स्वयं वेदमें ही इसकी कोई दूसरी व्याख्या ढूँढनी चाहिये, और वह हमें प्रथम मण्डलके ७५ वें सूक्तमें मिल भी जाती है।

यज्ञा नो मित्रावरुणा यज्ञा देवां ऋतं बृहत् ।

अग्ने यक्षि स्वं दमम् । ऋ. १।७५।५

'यज्ञ कर हमारे लिये मित्र और वरुणके प्रति, यज्ञ कर देवोंके प्रति, सत्यके, बृहत्के प्रति, हे अग्ने ! स्वकीय घरके प्रति यज्ञ कर।'।

यहां 'ऋतं, बृहत्' और 'स्वं दमम्' यज्ञके लक्ष्यको प्रकट करते हुए प्रतीत होते हैं और ये पूर्णतया वेदके उस जलंकारके अनुरूप है जिसमें यह कहा गया है कि यज्ञ देवोंकी ओर यात्रा है और मनुष्य स्वयं एक यात्री है जो सत्य, ज्योति या ज्ञानन्दकी ओर अग्रसर हो रहा है। इसलिये यह स्पष्ट है कि 'सत्यं,' 'बृहत्' और 'अग्निका स्वकीय घर' एक ही है। अग्नि और अन्य देवताओंके बारेमें यह कहा गया है कि वे सत्यमें उत्पन्न होते हैं, 'ऋतजात' विस्तार या बृहत्के अन्दर रहते हैं। तो हमारे इस संदर्भका जाशय यह होगा कि अग्नि जो मनुष्यके अंदर दिव्य संकल्प और दिव्य शक्ति रूप है, सत्य चेतनामें जो कि इसका अपना वास्तविक क्षेत्र है, बढता है, जहां मिथ्या बन्धन 'उरौ अनिवाधे,' विस्तृत और असीममें टूट कर गिर जाते हैं।

वेदकी पुस्तकें

	मूल्य रु.		मूल्य रु.
ऋग्वेद संहिता	१०)	यजुर्वेद वा. सं. पादसूची	१॥)
यजुर्वेद (वाजसनेयि संहिता)	४)	ऋग्वेद मंत्रसूची	२)
सामवेद	३)	अग्नि देवता मन्त्र संग्रह	६)
अथर्ववेद	६)	इन्द्र देवता मन्त्र संग्रह	७)
(यजुर्वेद) काण्व संहिता	५)	सोम देवता मन्त्र संग्रह	३)
(यजुर्वेद) मैत्रायणी संहिता	१०)	मरुदेवता मन्त्र संग्रह	२)
(यजुर्वेद) काठक संहिता	१०)	दैवत संहिता (तृतीय भाग)	६)
(यजुर्वेद) तैत्तिरीय संहिता, कृष्ण यजुर्वेद	१०)	सामवेद कौथुम शाखीयः ग्रामगेय	
यजुर्वेद-सर्वानुक्रम सूत्र	१॥)	(वेय प्रकृति) गानात्मकः	६)

मूल्य के साथ डा. व्य., राजिस्ट्रेशन एवं पेकींग खर्च संमिलित नहीं है।

मंत्री— स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूत]

वेदोंके गुह्यार्थक होनेकी परंपरा

(श्री अरविन्द)



भारतमें यह परंपरा प्राचीनतम कालसे चली आ रही है कि वेदके ऋषि, कवि-द्रष्टा, उपर्युक्त प्रकारके थे, ऐसे थे जो कि महान् आध्यात्मिक और गुह्य ज्ञानसे युक्त थे, जहां तक कि साधारण मान-प्राणियोंकी गति नहीं होती ऐसे थे जिन्होंने अपने इस ज्ञानको और अपनी शक्तिको एक गुप्त दीक्षाके द्वारा अपने वंशजों तथा अपने सुने हुए शिष्योंको पहुंचाया था। यह मान लेना निरी कपोल-कल्पना होगी कि भारतमें चली आ रही यह उपर्युक्त परंपरा सर्वथा निराधार है, एवं अन्धविश्वास है जो एकदम या धीरे-धीरे एक शून्यमेंसे, बिना कुछ भी आधारके, बन गया है। इस परंपराका कुछ न कुछ आधार अवश्य होना चाहिये, वह चाहे कितना थोड़ा क्यों न हो या वह गाथा द्वारा तथा ज्ञाताद्वियोंके उपचय द्वारा चाहे कितना बड़ा-चढ़ा दिया गया क्यों न हो। और यदि वह ठीक है तो इन कविद्रष्टाओंने अवश्य ही वेदमें अपने गुह्य ज्ञानकी, अपनी रहस्यमय विद्याकी कुछ-न कुछ बातें व्यक्तकी होंगी और वेदमंत्रोंमें ऐसी कुछ वस्तु अवश्य विद्यमान होगी, वह चाहे गुह्य भाषाके द्वारा या प्रतीकोंके कौशलके पीछे चाहे कितनी सुगुप्त रखी हुई हो और यदि वह वहां विद्यमान है तो यह कुछ हदतक उपलब्ध भी होनी चाहिये।

यह ठीक है कि बहुत पुरानी भाषा, लुप्तप्राय शब्द (यास्कने चार सौसे ऊपर शब्द गिनाये हैं जिनके कि अर्थ उसे ज्ञात नहीं थे) तथा एक कठिन और अप्रचलित भाषा-शैलीके कारण वेदका अभिप्राय अंधकारमें पड़ गया है, वैदिक प्रतीकोंके अर्थोंके (जिनके कि कोष व कुंजी उन्हींके पास रहती थी) खोये जानेसे ये जानेवाली संततियोंके लिये दुर्बोध हो गये, जब कि उपनिषदोंके कालमें भी उस युगके आध्यात्मिक जिज्ञासुओंको वेदके गुप्त ज्ञानमें प्रवेश पानेके लिए दीक्षा तथा ध्यान (योगाभ्यास) की जरूरत लेनी

पड़ती थी तो बादके विद्वान् तो किंकर्तव्य विमूढ़ ही हो गये और उन्हें शरण लेनी पड़ी अटकलकी तथा वेदोंकी बौद्धिक व्याख्या की जानेपर ही अपना ध्यान केंद्रित करनेकी या इन्हें गाथाओं तथा ब्राह्मण-ग्रंथोंके कथानकों (जो कि स्वयं प्रायः प्रतीकात्मक तथा अस्पष्ट थे) द्वारा समझने-समझानेकी। किंतु फिर भी वेदके उस रहस्यको उपलब्ध करना ही एक मात्र उपाय है जिससे कि हम वेदके सच्चे अर्थ और मूल्यको पा सकेंगे।

हमें यास्क मुनिके दिये संकेतको गंभीरता पूर्वक ग्रहण करना चाहिये, वेदके अंदर क्या है इस विषयमें हमें ऋषिके वर्णन किये ' द्रष्टाका ज्ञान है, कविद्रष्टाके वचन है, ' स्वीकार करना चाहिये और इस प्राचीन धर्म-ग्रंथके अर्थोंमें प्रवेश पानेके लिये जो कोई भी सूत्र प्राप्त कर सके उसे खोजकर पकड़ना चाहिये। यदि ऐसा न करेंगे तो वेद सदाके लिये सुहरबंद पुस्तक ही बने रहेंगे; व्याकरण-विशारद, व्युत्पत्ति-शास्त्री या विद्वानोंकी अटकलें हमारे लिए इन सुहरबंद कमरोंको कभी खोल नहीं सकेंगी।

क्योंकि यह एक तथ्य है कि वेद विषयक यह परंपरा कि प्राचीन वेदकी ऋचाओंमें एक गुह्य अर्थ और एक रहस्यमय ज्ञान निहित है इतनी पुरानी है जितने कि स्वयं वेद पुराने हैं। वैदिक ऋषियोंका यह विश्वास था कि उनके मंत्र चेतनाके उच्चतर गुण स्तरोंसे अंतः प्रेरित हुए जाते हैं और वे इस गुह्य ज्ञानको रखते हैं। वेदके वचन उनके सच्चे अर्थोंमें केवल इसीके द्वारा जाने जा सकते हैं जो कि स्वयं ऋषि या रहस्यवेत्ता (योगी) हो, जन्मोंके प्रति मंत्र अपने गुह्य ज्ञानको नहीं खोलते।

अपने चतुर्थ मंडलके एक मंत्र (४, ३, १६) में वामदेव ऋषि अपने-आपको इस रूपमें वर्णन करता है कि मैं अन्तःप्रकाशसे युक्त (विप्र), अपने विचार (मतिभिः)

तथा शब्दों (उच्यैः) के द्वारा व्यक्त कर रहा हूँ पथ-प्रदर्शक या जागे के जानेवाले (नीथानि), और गुह्य वचनोंको (निष्या वचांसि), ये द्रष्टृज्ञानके शब्द (काव्यानि) हैं जो कि द्रष्टा या ऋषिके लिये अपने जांतर जर्घको बोलनेवाले (कवये निवचना) हैं। ऋषि दीर्घतमा ऋचाओंके, वेद-मंत्रोंके, विषयमें कहता है कि ' ऋको जक्षरे परमे व्योमन्, यस्मिन् देवा जधि विश्वे निषिद्ः अर्थात् ऋचाएं रहती हैं उस परम जाकाशमें, जो कि जविनाश्य व अपरिवर्तनीय है जिसमें कि सबके सब देव स्थित हैं और फिर कहता है कि ' यस्तन्न वेद किमुचा करिष्यति ' अर्थात् वह जो कि उसको (उस जाकाशको) नहीं जानता वह ऋचासे क्या करेगा ? (ऋग्वेद १, १६४ ३६) ।

वह ऋषि जागे चार स्तरोंका उल्लेख करता है जहाँसे वाणी निकलती है, जिनमेंसे तीन तो गुह्यतामें छिपे हुए हैं और चौथा स्तर मानवीय है, और वहाँसे मनुष्योंके साधारण शब्द जाते हैं, परंतु वेदके शब्द और विचार उन उच्चतर तीन स्तरोंसे संबंध रखते हैं (१, १६४, ४५) । इसी तरह अन्यत्र वेद (१०, मंडल ७१ सूक्त) में वेद-वाणीको परम (प्रथम), वाणीका उच्चतम शिखर (वाचो जग्रं), श्रेष्ठ तथा परम निर्दोष (जरिग्रं) वर्णित किया गया है। यह (वेदवाणी) कुछ ऐसी वस्तु है जो कि गुह्यतामें छिपी हुई है और वहाँसे निकलती है और जन्मिष्यक्त होती है (प्रथम मंत्र) । यह सत्यद्रष्टा, ऋषियोंमें, प्रविष्ट हुई है और इसे प्राप्त किया जाता है उनकी वाणीकी पद्धति (पदचिन्हों) का अनुसरण करनेके द्वारा (तीसरा मंत्र) । परंतु सब कोई इसके गुह्य जर्घमें प्रवेश नहीं पा सकते ।

वे लोग जो जांतरिक जन्मिष्यको नहीं जानते ऐसे हैं जो देखते हुए भी नहीं देखते, सुनते हुए भी नहीं सुनते, कोई विरला ही होता है जिसे कि वाणी चाहती हुई अपने आपको प्रकट कर देती है, जैसे कि सुन्दर वस्त्र पहने हुई परन्ती अपने पतिको (चौथा मंत्र) । अन्य लोग जो कि ' वाणी ' के ... वेद— रूपी गौके— दूधको स्थिरतया पीनेमें जसमर्ग होते हैं यूं ही साथ-साथ फिरते हैं मानों वह गौ दूध देनेवाली है ही नहीं, उनके लिये वाणी ऐसे वृक्षके समान

है जो फलरहित और पुष्परहित है (पांचवां मंत्र) ।

वेदका यह सब कथन कितना स्पष्ट और यथार्थ है। इससे संदेहकी कुछ गुंजायशके बिना, यह परिणाम निकलता है कि उस समय भी जब कि ऋग्वेद लिखा जा रहा था ऋचाओंके विषयमें यह माना जाता था कि उनका कुछ गुप्त जर्घ है जो कि सबके लिये खुला नहीं है। सचमुच पवित्र वेद-मंत्रोंके जंदर एक गुह्य और आध्यात्मिक ज्ञान था और उस ज्ञानके द्वारा ही, ऐसा माना जाता था, कोई मनुष्य सत्यको जान सकता था, और एक उच्चतर जवस्थामें चढ सकता था। यह विश्वास कोई पीछेकी बनी परंपरा नहीं था किंतु इस विश्वासको, संभवतः, सभी ऋषि और प्रत्यक्षतः दीर्घतमा तथा वामदेव जैसे श्रेष्ठतम ऋषियोंमेंसे कुछ तो जवश्य रखते थे ।

तो यह परंपरा पहलेसे विद्यमान थी और फिर यह वैदिक कालके पश्चात् भी चलती गयी। एवं हम देखते हैं कि यास्क मुनि अपने निरुक्तमें वेदकी व्याख्यामें जनेक संप्रदायोंका उल्लेख करते हैं। एक याज्ञिक अर्थात् कर्मकाण्डीय व्याख्याका संप्रदाय था, एक ऐतिहासिक था जिसे गायत्रीमक व्याख्याका संप्रदाय कहना चाहिये, एक वैयाकरणों तथा व्युत्पत्ति-शास्त्रियों, नैरुक्तों द्वारा एवं नैयायिकोंद्वारा व्याख्या संप्रदाय और एक आध्यात्मिक व्याख्याका। यास्क स्वयं घोषित करता है कि त्रिविध ज्ञान है, जतएव सब वेदमंत्रोंके अर्थ भी त्रिविध होते हैं, एक अधियज्ञ या कर्मकाण्डिक ज्ञान, जधिदेवत अर्थात् देवता संबंधी ज्ञान और जंतमें आध्यात्मिक ज्ञान, परंतु इनमें तीसरा आध्यात्मिक जर्घ ही वेदका सच्चा जर्घ है और जब यह प्राप्त हो जाता है तो शेष जर्घ झट जाते हैं या कट जाते हैं। यह आध्यात्मिक अर्थ ही है जो कि प्राण करनेवाला है, शेष सब बाह्य हैं और गौण हैं ।

वह जागे कहता है कि ' ऋषियोंने सत्यको, वस्तुओंके सत्य धर्मको जांतर दृष्टिद्वारा प्रत्यक्ष देखा था, ' कि पीछेसे वह ज्ञान तथा वेदका जांतरिक जर्घ लुप्त प्रायः होते गये और जो थोड़ेसे ऋषि उन्हें तब भी जानते थे उन्हें इसकी रक्षा जिन्योंको दीक्षित करते जानेके द्वारा करनी पड़ी और जंतमें वेदार्थको जानेके लिए बाह्य और बौद्धिक उपार्योंको जैसे निरुक्त तथा अन्य वेदांग, उपयोगमें लाना पडा ।

वेदोंके गुह्यार्थक होनेकी परंपरा

(३२३)

परंतु तो भी वह कहता है, 'वेदका सच्चा जर्थ प्रत्यक्षतः जाना जा सकता है ध्यान-योग और तपस्याके द्वारा,' और जो लोग इन साधनोंको उपयोगमें ला सकते हैं उन्हें वेद-ज्ञानके लिये किन्हीं बाह्य सहायताओंकी आवश्यकता नहीं है। सो यास्कका यह कथन भी पर्याप्त स्पष्ट और निश्चयात्मक है।

यह परंपरा कि वेदमें एक रहस्यवादी तत्व है और वह भारतीय सभ्यता, भारतीय धर्म, दर्शन तथा संस्कृतिका मूल स्रोत है ऐतिहासिक तथ्यसे अधिक संगत है न कि यूरोपियनोंका इस परंपरागत विचारका उपहास करनेवाला मत। उन्नीसवीं शताब्दीके यूरोपियन पंडित जो कि एक भौतिकता प्रधान तर्कवादके युगके लेखक थे भारतजातिके इतिहासके विषयमें यह मानते थे कि यह एक प्रारंभिक जंगली या जर्द-जंगली अवस्थामेंसे हुआ विकास है, एक अपरिपक्व सामाजिक जीवन और धर्म और एक अंध-विश्वासोंका समुदाय है, जो कि बुद्धि और तर्कके, कला, दर्शन तथा भौतिक विज्ञानके प्रारंभिक उदय द्वारा और एक अधिक स्पष्ट और सयुक्तिक तथा अधिक तथ्यपरायण समझके द्वारा बनी बाह्य सभ्य संस्थाओंके रीति-रिवाजों और जादूतोंका परिणाम-रूप था। सो वेदविषयक यह परंपरागत प्राचीन विचार उनके इस चित्रमें ठीक नहीं बैठ सकता था, उसे तो वे प्राचीन अंधविश्वासपूर्ण विचारोंका एक भाग और जादि जंगली लोगोंकी एक सहज भूल ही मानते थे। परंतु हम जब भारतजातिके विकासके विषयमें अधिक ठीक-ठीक विचार बना सकते हैं।

वह कहना चाहिये कि प्राचीन जात्यतर सभ्यताएं अपने अंदर भावी विकासके तत्वोंको रखे हुए थीं किंतु उनके आदिम ज्ञानी लोग वैज्ञानिक और दार्शनिक या ऊंची बौद्धिक तर्कणा-शक्तिवाले लोग नहीं थे परंतु रहस्यवादी थे, बल्कि रहस्य-पुरुष, गुह्यवादी, धार्मिक जिज्ञासु थे। वे जिज्ञासु थे वस्तुओंके पीछे छिपे हुए सत्यके, न कि बाह्य ज्ञानके। वैज्ञानिक और दार्शनिक पीछेसे जाए; उनके पूर्व-वर्ती तो रहस्यवादी थे और प्रायः पाह्यागोरस तथा प्लेटो जैसे दार्शनिक भी कुछ सीमातक या तो रहस्यवादी थे या उनके बहुतसे विचार रहस्यवादियोंसे लिये गये थे।

भारतमें दार्शनिकता रहस्यवादियोंकी जिज्ञासासे ही

उदित हुई और भारतीय दर्शनोंने उनके (रहस्यवादी-योंके) आध्यात्मिक ध्येयोंको कायम रखा तथा विकसित किया और उनकी पद्धतियोंमेंसे कुछको जागामी भारतीय आध्यात्मिक शिक्षणमें तथा योगमें भी पहुंचाया। वैदिक परंपरा, यह तथ्य कि वेदमें एक रहस्यवादी तत्व है, इस ऐतिहासिक सत्यके साथ पूरी तरह ठीक बैठती है और भारतीय संस्कृतिके इतिहासमें अपना स्थान प्राप्त करती है। तो वेदविषयक यह परंपरा कि वेद भारतीय सभ्यताके मूल आधार हैं न कि केवल एक जंगली याज्ञिक पूजाविधि, केवल परंपरासे कुछ अधिक वस्तु है, यह इतिहासका एक वास्तविक तथ्य है।

वेदोंके दोहरे और प्रतीकात्मक अर्थ

परंतु यदि कहीं वेदमंत्रोंमें उच्च आध्यात्मिक ज्ञानके कुछ अंश या उच्च विचारोंसे पूर्ण कुछ वाक्य पाये भी जाय तो यह कल्पना की जा सकती है कि वे तो शायद वेदका केवल एक स्वरूपसा भाग है, जब कि शेष सब याज्ञिक पूजाविधि ही है, देवताओंके प्रति की गयी प्रार्थना या प्रशंसाके मंत्र हैं जो कि देवताओंका यज्ञ करनेवालों पर ऐसे भौतिक वरदानोंकी वर्षा करनेको प्रेरित करनेके लिए बोले जाते थे जैसे कि बहुतसी गौएं, घोड़े, ऊढाकू-वीर, पुत्र, जन्म, सब प्रकारकी संपत्ति, रक्षा, युद्धमें विजय, या फिर जाकाशसे वर्षाको ले आनेके लिये, सूर्यको बादलोंमेंसे रात्रिके पंजेसे छुड़ा कानेके लिये, सात नदियोंके उन्मुक्त प्रवाहित होनेके लिए, दस्युओंसे (या द्रविडियोंसे) अपने पशुओंके छुड़ा कानेके लिये तथा अन्य ऐसे ही वरदानोंके लिये जो कि उपरितक पर इस याज्ञिक पूजाके उद्दिष्ट विषय पतीत होते हैं।

तो इसके अनुसार तो वेदके ऋषि ऐसे लोग होने चाहिये जो कुछ आध्यात्मिक या रहस्यमय ज्ञानवाले हों किंतु वैसे उस युगके अनुकूल सभी साधारण प्रचलित विचारोंके बन्नीभूत होंगे। तो इन दोनों ही तत्वोंको ऋषियोंने अपने वैदिक सत्योंमें घुला-मिलाकर रखा होगा और ऐसा मान देनेसे कम-से कम अज्ञातक इसका भी कुछ कारण समझमें जा जायगा कि वेदमें इतनी जस्पष्टता, बल्कि इतनी विचित्र और कभी-कभी तो हास्यजनक जलन्यस्तता

(३२४)

वैदिक धर्म : अगस्त १९६१

क्यों है, जैसी कि परंपरागत भाष्योंके अनुसार वेदमें हमें दिखाई देता है ।

परंतु यदि, इसके प्रतिकूल, वेदोंमें उच्च विचारोंका एक बहुत बड़ा समुदाय स्पष्ट दृष्टिगोचर होता हो, यदि मंत्रोंका बहुत बड़ा भाग या समूचे सूक्त केवल उनके रहस्यमय तथा भयोंको ही प्रकट करनेवाले हों, और अंततः यदि वेदमें आये कर्मकाण्डों तथा बाह्य व्यौरे निरंतर ऐसे प्रतीकोंका रूप धारण करते पाये जाते हों जैसे कि रहस्यवादियोंद्वारा सदा प्रयुक्त किये जाते हैं और यदि स्वयं सूक्तोंके अंदर ही वैदिक शैलीके ऐसी ही होनेके कारण अनेक स्पष्ट संकेत बहिः कुछ सुस्पष्ट वचनतक मिलते हों, तब सब कुछ बदल जाता है । तब हम अपने सामने एक ऐसी महान् धर्मपुस्तकको पाते हैं जिसके कि दोहरे अर्थ हैं .. एक गुह्य अर्थ और दूसरा लौकिक अर्थ, स्वयं प्रतीकोंका भी वहां अपना अर्थ है जो कि उन्हें गुह्य अर्थोंका एक भाग, गुह्य शिक्षा तथा ज्ञानका एक तत्व बना देता है ।

संपूर्ण ही ऋग्वेद, शायद थोड़ेसे सूक्तोंको अपवाद-रूपमें छोड़कर, अपने आंतरिक अर्थमें वह महान् धर्मपुस्तक हो जाता है । साथ ही यह आवश्यक नहीं कि उसका बाह्य लौकिक अर्थ केवल पदोंका ही काम करे, क्योंकि ऋचाएं उनके निर्माताओं द्वारा शक्तिसे ऐसे वचन मानी गयी थीं जो न केवल आंतरिक वस्तुओंके लिये किंतु बाह्य वस्तुओंके लिये भी शक्तिशालिनी थीं । शुद्ध आध्यात्मिक धर्मग्रंथ तो केवल आध्यात्मिक अर्थोंसे अपना वास्ता रखता, किंतु ये प्राचीन रहस्यवादी साथ ही वे भी थे जिन्हें ' जाक-लिट्टस्ट ' (गुप्त विद्यावित्) कहना चाहिये, ये ऐसे थे जिनका विश्वास था कि आंतर साधनोंद्वारा आंतरिक ही नहीं किंतु बाह्य परिणाम भी उत्पन्न किये जा सकते हैं विचार और वाणीका ऐसा प्रयोग किया जा सकता है कि जिससे इसके द्वारा प्रत्येक प्रकारकी स्वयं वेदमें प्रचलित सुहावरेमें कहें तो ' मानुषी और दैवी ' दोनों प्रकारकी सिद्धि या सफलता प्राप्त की जा सकती है ।

लखनऊ विद्यापीठकी एम्. ए. की

परीक्षाके लिये ऋग्वेदके सूक्त

लखनऊ विद्यापीठकी एम्. ए. (M. A.) की परीक्षामें ऋग्वेदके प्रथम मंडलके पहिले ५० सूक्त रखे हैं । हमारा हिंदी अर्थ, भावार्थ, स्पष्टीकरण आदि नीचे लिखे सूक्तोंका छप कर तैयार है—

	मूल्य	डा. व्य.		मूल्य	डा. व्य.
१ मधुच्छंदा ऋषिके १२० मंत्र १) ॥	१० कुत्स ऋषिके २५१ मंत्र २) ॥		११ त्रित ,, ११२ ,, १॥ ॥		
२ मेघातिथि ,, ३२० ,, २) ॥	यहांतक ऋग्वेदके प्रथम मंडलके सूक्त हैं ।				
३ शुनःशेष ,, १०७ ,, १) ॥	१२ संवनन ऋषिके १९ मंत्र ॥) =)		१३ हिरण्यगर्भ ,, १२७ ,, १) ॥		
४ हिरण्यस्तूप ,, ९६ ,, १) ॥	१४ नारायण ,, ३० ,, १) ॥		१५ वृहस्पति ,, २० ,, १) ॥		
५ कण्व ,, १२५ ,, २) ॥	१६ वागम्भृणी ऋषिकाके ८ ,, १) ॥		१७ विश्वकर्मा ऋषिके १४ ,, १) ॥		
यहांतक ५० सूक्त ऋग्वेदके प्रथम मंडलके हैं ।			१८ सप्तऋषि ,, ७ ,, ॥) =)		
६ सव्य ऋषिके ७२ मंत्र १) ॥	१९ वसिष्ठ ,, ९४५ ,, ७) १॥		२० भरद्वाज ,, ७७३ ,, ७) १॥		
७ नोधा ,, ८५ ,, १) ॥					
८ पराशर ,, १०५ ,, १) ॥					
९ गौतम ,, २१४ ,, २) ॥					

ये पुस्तक सब पुस्तक-विक्रेताओंके पास मिलते हैं ।

मन्त्री— स्वाध्यायमंडल, पोस्ट— ' स्वाध्यायमंडल (पारडी) ' पारडी, जि. सूरत

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

(४९)

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप् ।

२२४ सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं
प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम् ।
शतं जीव शरदो वर्धमानः
अग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठः ॥

अथर्व. ७।५३।२

हे प्राण और अपानो ! (सं क्रामतां) शरीरमें उत्तम प्रकार संचार करो, (शरीरं मा जहीतं) शरीरको मत छोड़ो, वे दोनों (इह ते सयुजौ स्ताम्) यहां तेरे सहचारी होकर रहें, (वर्धमानः शरदः शतं जीव) बढ़ता हुआ तू सौ वर्ष जीवित रह, (ते अधिपा वसिष्ठः गोपा अग्निः) तेरा अधिपति निवासक और रक्षक तेजस्वी देव है ॥ २२४ ॥

प्राणायाम करनेसे दीर्घ जीवन होता है । ' श्वास ' जन्दर जानेवाले प्राणको कहते हैं और ' उच्छ्वास ' बाहर जानेवाले प्राणको कहते हैं । ये श्वास और उच्छ्वास (पुरक और रेचक) जहांतक हो वहांतक दीर्घ करने चाहिये । बीचमें थोड़ा कुंभक करना चाहिये । प्रातः काल, मध्याह्नमें, और सायंकाल, यह प्राणायाम करनेसे दीर्घ जीवन प्राप्त होनेमें सहायता होती है ।

ब्रह्मा । आयुः । भुरिक् ।

२२५ आयुर्यत् ते अतिहितं पराचैः
अपानः प्राणः पुनरा ताविताम् ।
अग्निष्टदाहानिर्ऋतेरुपस्थात्
तदात्मनि पुनरा वैश्यामि ते ॥

अथर्व. ७।५३।३

(ते यत् आयुः पराचैः अतिहितं) तेरी जो आयु विरुद्ध गतियोंसे घट गयी है, उस स्थान पर (तौ प्राणः अपानः पुनः आ इतां) वे प्राण और अपान पुनः आवें, (अग्निः निर्ऋतेः उपस्थात् तत् पुनः आहाः) वह तेजस्वी देव दुर्गतिके समीपसे पुनः आता है, (ते आत्मनि तत् पुनः आवेश्यामि) तेरे जन्दर उसको पुनः हम स्थापित करते हैं ॥ २२५ ॥

दुराचार करनेसे आयु कम होती है । अतः दुराचार नहीं करने चाहिये । पर दुराचार हो गये, तो भी पुनः दीर्घ

श्वसन-प्राणायाम आदि योग्य रीतिसे करनेसे आयु दीर्घ होती है । अतः जिनके जीवनमें दुराचार हुए हैं वे पुनः प्राणायामादि करने लग जाय तो अवश्य लाभ होगा ।

ब्रह्मा । आयुः । उष्णिग्गर्भां पंक्तिः ।

२२६ मेमं प्राणो हासीन्मो अपानः

अवहाय परा गात् ।

सप्तर्षिभ्य एनं परि ददामि

त एनं स्वस्ति जरसे वहन्तु ॥ अथर्व. ७।५३।४

(इमं प्राणः मा हासीत्) इसको प्राण न छोड़े, और (अपानः अवहाय परा मा गात्) अपान भी इसे छोड़कर दूर न जावे, (सप्तर्षिभ्यः एनं परिददामि) सात ऋषियोंके समीप इसको देता हूं, (ते एनं जरसे स्वस्ति वहन्तु) वे इसे वृद्धावस्था तक सुखपूर्वक ले जावें ॥ २२६ ॥

प्राण और अपान शरीरमें ठीक रहने चाहिये । प्राणायामसे प्राण और अपान ठीक होते हैं । प्राणकी गति योग्य करनेसे अपानकी गति ठीक होती है । सात ऋषि दो नाख, दो कान, दो नाकके छेद और एक मुख ये हैं । प्राण ठीक होनेसे ये सात ऋषि उत्तम कार्य करते हैं । प्राण और ये इन्द्रिय मिलकर दीर्घ जीवन करनेमें सहायता करते हैं । ये इंद्रिय सदाचारमें रखने चाहिये और प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये । जिससे दीर्घ जीवन सिद्ध होता है ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२२७ प्र विंशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।

अयं जरिष्णः शैवधिरारिष्ट इह वर्धताम् ॥

अथर्व. ७।५३।५

हे प्राण और अपान ! (व्रजं अनड्वाहौ इव प्रवि-
शतं) जैसे गौशालामें बैल घुसते हैं, उस प्रकार तुम दोनों शरीरमें प्रविष्ट होवो, (अयं जरिष्णः शैवधिः) यह प्राण वार्धक्य तककी पूर्ण आयुका खजाना है, यह (इह अरिष्टः वर्धतां) यहां न घटता हुआ बढे ॥ २२७ ॥

प्राण और अपान शरीरमें वेगसे घुसें । प्राण छातीमें प्रविष्ट होता है और अपान मलाशयमें कार्य करता है । शौच जानेके समय उच्छ्वास करके प्राणको जहांतक होसके वहां तक बाहर ही रोका जाय, तो जल्दी शौच जाता है

जौर शौचाक्षय एकदम स्वच्छ होता है। प्राणके बाह्य कुंभक करनेसे शौच शुद्धि होनेमें बड़ी सहायता होती है। प्राणायामसे छातीमें रक्त शुद्ध होता है। इस तरह प्राण जौर जपान शरीरमें बड़े महत्वका कार्य करते हैं। इनका योग्य रीतिसे जायाम किया जाय, तो शरीर दीर्घायु प्राप्त करके सुखी हो सकता है।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२२८ आ ते प्राणं सुवामसि

परा यक्ष्मं सुवामि ते ।

आयुर्नो विश्वतो दधद्यमश्विरेण्यः ॥

अथ. ७।५३।६

(ते प्राणं आ सुवामसि) तेरे प्राणको मैं प्रेरित करता हूं, (ते यक्ष्मं परा सुवामि) तेरे क्षय रोगको मैं दूर करता हूं, (अयं चरेण्यः अग्निः) यह श्रेष्ठ जग्नि (नः आयुः विद्वतः दधत्) हमारे अन्दर जायुको सब प्रकारसे स्थापित करे ॥ २२८ ॥

शरीरमें प्राणायाम द्वारा प्राणको शरीर रक्षणके कार्यमें लगाना चाहिये। प्राणायामसे रक्त शुद्ध होता है, जिससे अनेक रोग दूर होते हैं। तथा शरीरकी उष्णता रूपी 'चरेण्य अग्नि' शरीरमें कार्य करनेके योग्य अवस्थामें रहता है। यही जग्नि मानवोंकी जायु दीर्घ करता है।

प्राणायामसे प्राणको बलवान् बनाना, रोगोंको दूर करना, मन उत्साहित रखना और जायुको बढ़ाना ये मानव-के कर्तव्य यहां बताये हैं।

ब्रह्मा । आत्मा । त्रिष्टुप् ।

२२९ को अस्या नो द्रुहोऽवचवत्या

उन्नैष्यति क्षत्रियो वस्य इच्छन् ।

को यज्ञकामः क उ पूर्त्तिकामः

को देवेषु वनुते दीर्घमायुः ॥

अथर्व. ७।१०३।१

(कः [प्रजापतिः] क्षत्रियः वस्यः इच्छन्) प्रजापालक क्षत्रिय प्रजाका धन बढ़ानेकी इच्छा करता हुआ (अस्याः अवचवत्याः द्रुहः नः उत् नैष्यति) परस्परके द्रोह रूप इस निन्दनीय दुर्गतिसे हमें ऊपर उठावेगा, (का= प्रजा-

पतिः यज्ञकामः) प्रजापालकरूप यज्ञकर्ता (उ कः पूर्त्तिकामः) और वही प्रजापालक हमारी पूर्णता करनेवाला (देवेषु कः दीर्घ आयुः वनुते) देवोंके बीचमें प्रजापालक ही दीर्घायु देता है ॥ २२९ ॥

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप् ।

२३० अन्तकाय मृत्यवे नमः

प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् ।

इहायमस्तु पुरुषः सहासुना

सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ॥ अथ. ८।१।१

(मृत्यवे अन्तकाय नमः) मृत्यु रूपसे सबका जन्त करनेवाके परमेश्वरको नमस्कार है, हे मनुष्य ! (ते प्राणाः अपानाः इह रमन्तां) तेरे प्राण और जपान यहां शरीरमें आनन्दसे रहें, (अयं पुरुषः असुना सह) यह मनुष्य प्राणके साथ (इह अमृतस्य लोके सूर्यस्य भागे अस्तु) इस अमृतके स्थान रूपी सूर्यके प्रकाशके भागमें रहे ॥ २३० ॥

प्राण और जपान इस शरीरमें कार्यक्षम स्थितिमें रहें। अपना जपना कार्य उत्तम रीतिसे करते रहें। यह मनुष्य उत्तम बलवान् प्राण शक्तिके साथ जहां सूर्यप्रकाश होता है वहां रहे। सूर्यप्रकाश अमृतका स्थान है अतः सूर्यप्रकाशमें रहनेवाला मनुष्य दीर्घजीवन प्राप्त कर सकता है। अर्थात् सूर्यप्रकाश जहां न हो ऐसे स्थानमें रहनेवाला मनुष्य अल्प जायु होता है।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२३१ इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः ।

उत् त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो

दैव्या वाचा भिरामसि ॥ अथर्व. ८।१।३

(इह ते असुः) यहां तेरा जीवन (इह प्राणः इह आयुः) यहां प्राण यहां जायु और (इह ते मनः) यहां तेरा मन स्थिर रहे, (दैव्या वाचा निर्ऋत्याः पाशेभ्यः) दिव्य वाणीके द्वारा अधोगतिके फाँतोंसे (त्वा उत् भिरामसि) तुझे ऊपर स्थापित करते हैं ॥ २३१ ॥

वाणी, मन, जीवन, प्राण और जायु विनाशके पाशोंसे हमें बचावें और हमारे अन्दर दीर्घ जायु स्थापित करें।

ब्रह्मा । आयुः । प्रस्तारपंक्तिः ।

२३२ उत्क्रामातः पुरुष माव पत्था
मृत्योः पङ्चीशमवमुंचमानः ।
मा छिन्त्या अस्मात्लोकाद्
अग्नेः सूर्यस्य संदशः ॥ अथर्व. ८।१।४

हे पुरुष ! (अतः उत् क्राम) यहाँसे ऊपर चढ़
(मा अवपत्थाः) नीचे मत गिर, (मृत्योः पङ्चीशं
अवमुंचमानः) मृत्युकी बेड़ीसे अपने आपको छुड़ावा
हुआ (अस्मात् लोकात्) इस लोकसे तथा (अग्नेः
सूर्यस्य संदशः) अग्नि और सूर्यके दर्शनसे अपने
आपको (मा छिन्त्याः) दूर मत रख ॥ २३२ ॥

उन्नति करनी चाहिये, नीचे गिरना नहीं चाहिये । इस
लोकमें अग्नि और सूर्यके दर्शनसे कभी दूर रहना नहीं
चाहिये । ये ही दीर्घ जीवन देनेवाले देव हैं ।

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप् ।

२३३ तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा
तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे शं तपाति
त्वा मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्टाः ॥ अथर्व. ८।१।५

(मातरिश्वा वातः तुभ्यं पवतां) अन्तरिक्षमें रहने-
वाला वायु तेरे लिए शुद्धता करे, (आपः तुभ्यं अमृ-
तानि वर्षन्ताम्) जल तेरे लिए अमृतकी वृष्टि करे,
(सूर्यः ते तन्वे शं तपाति) सूर्य तेरे शरीरके लिए
सुखकर तपता है, (मृत्युः त्वां दयतां) मृत्यु तुझ पर
दया करे, और तू (मा प्रमेष्टाः) मत मर ॥ २३३ ॥

वायु, जल, सूर्य मनुष्यका संरक्षण करें । मृत्यु इस
मनुष्यसे दूर रहे अर्थात् इसको न मारे ।

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप् ।

२३४ उद्यानं ते पुरुष नावयानं
जीवातुं ते दक्षताति कृणोमि ।
आ हि रोहिमममृतं सुखं रथं
अथ जिविर्विदथमा वदासि ॥

अथर्व. ८।१।६

हे पुरुष ! (ते उत्-यानं) तेरी उन्नतिकी ओर गति
हो, (न अव-यानं) ज्वनतिकी ओर गति न होवे,
इसलिए मैं (ते जीवातुं दक्षताति कृणोमि) तुझे
जीवन और बल देता हूँ, (इमं अमृतं सुखं रथं आरोह)
इस अमरत्व देनेवाले सुखकारक शरीर रूपी रथपर चढ़,
(अथ जिविः) और जब तू वृद्ध होगा, तब (विदथं
आवदासि) विज्ञानका उपदेश करेगा ॥ २३४ ॥

हे मनुष्य ! तू उन्नत हो, कभी ज्वनतिके मार्गसे न
जा । तुझे दीर्घ जीवन और बल प्राप्त हो । इस शरी-
ररूपी रथ पर चढ़ और दीर्घ जीवनके मार्गसे जागे बढ ।
इस तरह जब तू वृद्ध होगा तब तू अपने जीवनमें प्राप्त
ज्ञानसे अनुभवोंका उपदेश दूसरोंको मार्ग बतानेके लिये
करेगा ।

ब्रह्मा । आयुः । त्रिपदा विराट् गायत्री ।

२३५ मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरौ भूत्
मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितृन् ।
विश्वे देवा अभिरक्षन्तु त्वेह ॥ अथ. ८।१।७

(ते मनः तत्र मा गात्) तेरा मन उस निषिद्ध
मार्गमें न जावे, और वहाँ (मा तिरः भूत्) लीन न
होवे, (जीवेभ्यः मा प्रमदः) जीवोंके सम्बन्धमें प्रमाद
न कर (पितृन् मा अनुगाः) पितरोंके पीछे न जा
अर्थात् मर मत, (इह विश्वे देवाः त्वा अभि रक्षन्तु)
यहाँ सब देव तेरी रक्षा करें ॥ २३५ ॥

हीन मार्गसे चलना नहीं । हीन मार्गमें रमना नहीं ।
अन्य मानवोंका जहित करना नहीं । उनका जितना हो
उतना हित ही करना चाहिये । मृत्युके मार्गसे जाना नहीं ।
दीर्घ जीवन जिससे प्राप्त हो सकता है उस मार्गसे ही
जाना चाहिये ।

ब्रह्मा । आयुः । विराट्पथ्यावृहती ।

२३६ मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिः
पह्या ते हस्तौ रभामहे ॥ अथर्व. ८।१।८

(गतानां मा आदीधीथाः) मरे हुएजोंके लिए
बिलाप मत कर, क्योंकि (ये परावतं नयन्ति) वे तो

(५२)

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

दूर ले जाते हैं, भवः (इहि आ) यहां जा जौर (तमसः ज्योतिः आरोह) जन्धकारको छोड़ प्रकाशमें आ, (ते हस्तौ रभामहे) तेरे हाथोंको हम पकड़ते हैं ॥ २३६ ॥

प्रकाशके मार्गसे चलना चाहिये । जन्धकारके मार्गसे कदापि नहीं जाना चाहिये ।

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप् ।

२३७ मैतं पन्थामनु गा भीम एष
येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।

तम एतत् पुरुष मा प्रपत्था
भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥ जयवं. ८।१।१०

(एतत् पन्थां अनु मा गाः) इस डुरे मार्गका अनुसरण मत कर, (भीमः एषः) यह भयंकर मार्ग है, (येन पूर्वं न ईयथ) जिससे पहिले नहीं जाते हैं, (तं ब्रवीमि) उस विषयमें मैं कहता हूं कि, हे पुरुष ! (एतत् तमः) यह जन्धकारका मार्ग है, उस मार्गमें (मा प्रपत्थाः) मत जा, (ते परस्तात् भयं) तेरे लिए भागे भय है, (अर्वाक् ते अभयं) जौर इधर अभय है ॥ २३७ ॥

समानक मार्गसे जाना नहीं । भय जहां न हो उसी मार्गसे जाना चाहिये ।

ब्रह्मा । आयुः । प्रस्तरपांकिः ।

२३८ जीवेश्यस्त्वा समुद्रे वायुरिन्द्रो
धाता दधातु सविता त्रायमाणः ।

मा त्वा प्राणो बलं हासीद्
असुं तेऽनु ह्वयामसि ॥ जयवं. ८।१।१५

(त्रायमाणः धाता सविता वायुः इन्द्रः) रक्षक, पोषक, प्रेरक, जीवन साधक प्रभु (जीवेश्यः त्वा सं-उद्रे दधातु) सब प्राणियोंके लिए तथा तेरे लिए पूर्ण उत्कृष्टता धारण करे । (त्वा प्राणः बलं मा हासीत्) तेरे लिए प्राण न छोड़े (ते असुं अनु ह्वयामसि) तेरे प्राणको हम अनुकूलताके साथ बुलाते हैं ॥ २३८ ॥

प्राणका बल कम हो ऐसा नहीं करना चाहिये । प्राणका बल बढ़े ऐसा व्यवहार करना चाहिये ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२३९ उत् त्वा द्यौरुत्पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रभीत् ।
उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ॥

जयवं. ८।१।१७

(द्यौः उत्) शुलोक (पृथिवी उत्) पृथिवी जौर (प्रजापतिः त्वा उत् अग्रभीत्) प्रजापालक देव तुझे ऊपर उठावे । (सोमराज्ञीः औषधयः) सोम राजावाली औषधियां (त्वा मृत्योः उत् अपीपरन्) तुझे मृत्युसे ऊपर उठावे अर्थात् तेरी रक्षा करें ॥ २३९ ॥

जौषधियोंके सेवनसे मृत्युका भय दूर होता है जौर दीर्घ आयु प्राप्त होती है ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२४० अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः ।
इमं सहस्रवीर्येण मृत्योर्हृत् पारयामसि ॥

जय. ८।१।१८

हे (देवाः) देवो ! (अयं इह एव अस्तु) यह यहां इस लोकमें ही रहे, (अयं इतः अमुत्र मा गात्) यह यहांसे वहां परलोकमें न जावे, (सहस्रवीर्येण इमं मृत्योः उत् पारयामसि) हजारों बलोंसे युक्त उपायसे इस मनुष्यको मृत्युसे हम पार कराते हैं ॥ २४० ॥

यह मनुष्य इस लोकमें दीर्घ काल तक रहे, जलदी परलोकमें न जावे । सहस्रों उपायोंको करके मनुष्यका मृत्युसे बचाव करना योग्य है ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२४१ उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः ।
मा त्वा व्यस्तकेश्यो मा त्वाघरुदो रुदन् ॥

जय. ८।१।१९

(मृत्योः त्वा उत् अपीपरं) मृत्युसे तुझको हम पार कराते हैं, (वयोधसः सं धमन्तु) जल्ल जयवा जायुको धारण करनेवाले देव तुझे पुष्ट करें । (व्यस्तकेश्यः अघरुदः) बालोंको खोलकर बुरी तरहसे रोनेवाली स्त्रियां (मा त्वा रुदन्, मा त्वा) तेरे लिए न रोयें अर्थात् तेरी मृत्युके कारण इन पर रोनेका प्रसंग न आवे ॥ २४१ ॥

मृत्युसे दूर होकर योग्य जल्लका सेवन करके अपनी आयुको बढ़ाना चाहिये ।

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

(५३)

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२४२ आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।

सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥

अथर्व. ८।१।२०

(त्वा आहार्ष) मैं तुझे लाया हूँ, (त्वा अविदं) मैंने तुझे पुनः प्राप्त किया है, (पुनः नवः पुनः आगाः) फिर नया होकर फिर आ गया है, हे (सर्वाङ्ग) सम्पूर्ण अंगोंवाले मनुष्य ! (ते सर्वं चक्षुः) तेरी पूर्ण दृष्टि और (ते सर्वं आयुः च) तेरी पूर्ण आयु तेरे लिए (अविदं) प्राप्त कराई है ॥ २४२ ॥

मैंने तुझे मृत्युसे बचाया है । जब तू नया सा हो गया है । तेरे सब अंग निर्दोष हुए हैं । चक्षु जादि तेरे इंद्रिय नवीन जैसे हुए हैं और तुझे पूर्ण आयु प्राप्त हुई है । जोषधि सेवन तथा योगके अभ्याससे सब शरीर पुनः तरुण हो सकता है और दीर्घ जीवन प्राप्त हो सकता है ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२४३ व्यवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत् तमो अक्रमीत् ।

अप त्वन्मृत्युं निर्क्रांतिं अप यक्ष्मं नि दध्मसि ॥

अथर्व. ८।१।२१

जब (त्वत् तमः व्यवात्) तेरे पाससे अन्धकार चला गया है, (अप अक्रमीत्) तेरेसे दूर चला गया है, (ते ज्योतिः अभूत्) तेरा प्रकाश फैल गया है, (त्वत् निर्क्रांतिं मृत्युं अप नि दध्मसि) तेरेसे दुर्गति और मृत्युको हम दूर हटाते हैं, तथा तेरेसे (यक्ष्मं अप नि दध्मसि) रोगको हम दूर करते हैं ॥ २४३ ॥

रोग जादिको हटाना चाहिये । अन्धकार और दुर्गतिको दूर करना चाहिये और दीर्घ आयुको प्राप्त करनेके जो साधन हों उनको आचरणमें लाना चाहिये ।

ब्रह्मा । आयुः । भुरिक् ।

२४४ आ रभस्वेमाममृतस्य श्रुष्टिं

अच्छिद्यमाना जरदंष्टिरस्तु ते ।

असुं त आयुः पुनरा भराभि

रजस्तमो मोषं गा मा प्रमेष्टाः ॥

अथर्व. ८।२।१

(हमें अमृतस्य श्रुष्टिं आरभस्व) इस अमृत रसके पानको प्रारम्भ कर, (ते जरदंष्टिः अच्छिद्यमाना अस्तु) तेरी वृद्धावस्था तक जीवन भोग अविच्छिन्न रीतिसे रहें (ते असुं आयुः पुनः आ भराभि) तेरे प्राण और जीवनको मैं तेरे अन्दर पुनः भरता हूँ, (रजः तमः मा उपगाः) भोग और अज्ञानके पास न जा, (मा प्र मेष्टाः) मर मत ॥ २४४ ॥

जोषधिके अमृत रसका पान करो । उत्तम वृद्धावस्थाको स्वास्थ्यपूर्ण रीतिसे प्राप्त करो और दीर्घ आयुको पूर्ण आरोग्यके साथ प्राप्त करो ।

ब्रह्मा । आयुः । भुरिक् ।

२४५ जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङ्

आ त्वा हराभि शतशारदाय ।

अवमुंचन्मृत्युपाशानशस्ति

द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥

अथर्व. ८।२।२

(जीवतां ज्योतिः अर्वाङ् अभि एहि) जीवित मनुष्योंकी ज्योति इस ओरसे प्राप्त कर, (त्वा शत-शारदाय आ हराभि) तुझे सौ वर्षकी आयुके लिए लाता हूँ, (मृत्युपाशान् अशस्ति अवमुंचन्) मृत्युके पाशों और अकीर्तोंको हटाता हुआ (ते प्रतरं द्राघीयः आयुः दधामि) मैं तेरे लिए उत्कृष्ट दीर्घ आयु देता हूँ ॥ २४५ ॥

जीवनकी ज्योति प्राप्त करो । पूर्ण सौ वर्षोंका जीवन तुझे प्राप्त हो । मृत्युके पाशोंको तोड़कर नया जीवन प्राप्त करके दीर्घायु बनकर रहो ।

ब्रह्मा । आयुः । आस्तारपंक्तिः ।

२४६ वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।

यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि

सं विस्वाङ्गैर्वद जिह्यालपन् ॥

अथर्व. ८।२।३

(वातात् ते प्राणं अविदं) वायुसे तेरे प्राणको प्राप्त किया है (अहं सूर्यात् तव चक्षुः) मैंने सूर्यसे तेरे नेत्रको प्राप्त किया, (यत् ते मनः त्वयि तद् धारयामि) जो तेरा मन है उसको मैं तेरे अन्दर धारण करता हूँ (अंगैः संविस्व) अपने सब अवयवोंको प्राप्त हो,

(५४)

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

(जिह्वा आलपन् वद) जिह्वासे शब्दोच्चार करता हुआ
तू बोल ॥ २४६ ॥

वायुसे प्राण, सूर्यसे नेत्र इस तरह अन्य देवोंसे अन्य अवयव बने हैं । इन देवताओंके अंशोंसे बने अपने सब अवयवोंको धारण कर और इन शरीरस्थ देवोंका संचालक मैं हूँ, यह तू मनमें समझ और जिह्वासे इस तत्त्वज्ञानका उपदेश कर । इससे तेरा बल बढ़ेगा और दीर्घायु प्राप्त होगी ।

ब्रह्मा । आयुः । प्रस्तारपंक्तिः ।

२४७ प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदां

अग्निमिव ज्ञातमग्निं सं धमामि ।

नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम् ॥

अथर्व. ८।२।४

(जातं अग्निं इव) अभी उत्पन्न हुए अग्निके समान
(त्वा द्विपदां चतुष्पदां प्राणेन सं धमामि) द्विपाद
और चतुष्पादोंके प्राणसे जीवन देता हूँ, हे मृत्यो ! (ते
चक्षुषे नमः) तेरी नेत्र इन्द्रियके लिए नमस्कार और
(ते प्राणाय नमः अकरं) तेरे प्राणके किए नमन
करता हूँ ॥ २४७ ॥

शरीरमें दस प्राणोंमें ' प्राण ' मुख्य है । तथा इन्द्रियोंमें
' नेत्र ' मुख्य है । इनकी श्रेष्ठता जानकर इनको प्रणाम
किया जाय अर्थात् इनकी शक्ति श्रेष्ठ कार्योंमें लगायी जाय ।
कभी पुरी प्रवृत्तिमें इनको न प्रयुक्त किया जाय । सब
प्राणियोंमें वही प्राणकी शक्ति कार्य कर रही है, जिससे
सब पशु पक्षी तथा मानव जीवित रहते हैं । इस प्राणका
कार्य देखकर अपने अन्दरके प्राणको बलवान् बनाना चाहिये ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२४८ अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि ।

कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ॥

अथर्व. ८।२।५

(अयं जीवतु) यह पुरुष जीवित रहे, (मा मृत)
न मरे, (इमं सं ईरयामसि) इसको इस सचेत करते
हैं, (अस्मै भेषजं कृणोमि) इसके लिए मैं औषध
बनाता हूँ, हे मृत्यो ! (पुरुषं मा वधीः) इस पुरुषका
वध न कर ॥ २४८ ॥

मैं जल्दी मरूंगा नहीं, शरीरमें दोष हुआ, तो मैं औष-
धिका सेवन करके उन दोषोंको अपने शरीरसे हटा दूंगा
और मृत्युको दूर करके दीर्घ जीवन प्राप्त करूंगा ।

ब्रह्मा । आयुः । भुरिक् ।

२४९ अग्निं ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं

तवैव सन्तस्वहाया इहास्तु ।

भवाश्वौ मृडतं शर्म यच्छतं

अपसिध्यं दुरितं धत्तमायुः ॥ अथ. ८।२।७

(अग्निं ब्रूहि) तू उपदेश कर, (मा रभथाः)
बुरा बर्ताव न कर, (इमं सृज) इस पुरुषको जगत्में
चला, (तव एव सन्) तेरा ही होकर यह (सर्व-
हायाः इह अस्तु) पूर्ण आयु तक यहां रहे, (भवा-श्वौ)
हे भव और शर्व ! तुम दोनों (मृडतं) सुखी करो,
(शर्म यच्छतं) सुख दो, (दुरितं अपसिध्यं) पापको
दूर करके (आयुः धत्तं) दीर्घायु धारण कराओ ॥ २४९ ॥
पापको दूर कीजिये । अपने शरीरसे पाप न हो ऐसा
निश्चय कीजिये । संपूर्ण जीवनमें सुखसे रहो और दूसरोंको
सुख दो । अपनी आयुको दीर्घ करके धारण करो ।

ब्रह्मा । आयुः । पुरस्ताज्ज्योतिष्मती जगती ।

२५० अस्मै मृत्यो अग्निं ब्रूहिमं दयस्वोदितोयमेतु ।

अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरा

शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ॥

अथ. ८।२।८

हे मृत्यो ! (अस्मै अग्निं ब्रूहि) इसको उपदेश कर,
(इमं दयस्व) इस पर दया कर, (अयं इतः उत् एतु)
यह इस विपत्तिसे ऊपर उठे, और (अ-रिष्टः सर्वाङ्गः)
पीडा रहित सब अंगोंसे पूर्ण (सु-श्रुत्) उत्तम ज्ञान या
श्रवण शक्तिसे युक्त होकर (जरसा शतहायनः) वृद्धा-
वस्थामें सौ वर्षसे युक्त होकर (आत्मना भुजं अश्नुतां)
अपनी शक्तिसे भोगोंको प्राप्त करे ॥ २५० ॥

अपने आपको विपत्तिसे दूर रखो । विपत्ति आ गयी तो
अपने प्रयत्नसे उसको दूर करो । अपने सब अवयव नीरोग
और पुष्ट करके उनको धारण करो । इस प्रकार सौ वर्षकी
पूर्ण आयुको धारण करके भोगोंको योग्य रीतिसे भोगो और
आनंदसे दीर्घ आयुका उपभोग करो ।

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

(५९)

ब्रह्मा । आयुः । पंचपदा जगती ।

२५१ देवानां हेतिः परिं त्वा वृणक्तु
 पारयामि त्वा रजसं उत् त्वा मृत्योरपीपरम् ।
 आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं
 जीवातवे ते परिधिं दधामि ॥ अथर्व. ८।२।९

(देवानां हेतिः त्वा परिवृणक्तु) देवोंके शस्त्र तुझे दूर रखें, (त्वा रजसः पारयामि) तुझे रजोगुणसे पार करता हूं (त्वा मृत्योः उत् अपीपरं) तुझे मृत्युसे उठाया है, तू मृत्युसे दूर हो चुका है, (क्रव्यादं अग्निं आरात् निरूहं) मांसभक्षक अग्निको दूर रखता हूं, (ते जीवातवे परिधिं दधामि) तेरे जीवनके लिए मर्यादा निश्चित करता हूं ॥ २५१ ॥

मारक शस्त्र तेरे पास न आ जाय । ओगोंमें तू लिप्त न हो । मृत्युसे तुझे ऊपर उठाया है । मांसभक्षक अग्नि अर्थात् प्रेतको जलानेवाला अग्नि तुझसे दूर किया है । अर्थात् तू जलदी नहीं मरेगा । तेरी जीवनकी मर्यादा सुदीर्घ की है ।

ब्रह्मा । आयुः । विष्टारपंक्तिः ।

२५२ कृणोमि ते प्राणापानौ जरां
 मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ।
 वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतान्
 चरतोप सेधामि सर्वान् ॥ अथर्व. ८।२।११

(ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घ आयुः स्वस्ति कृणोमि) तेरे लिए प्राण, अपान, बुढ़ापा, दीर्घ आयु और जन्तुमें मृत्यु कल्याणमय करता हूं । (वैवस्वतेन प्रहितान् चरतः सर्वान् यमदूतान्) विवस्वान् सूर्यसे उत्पन्न कालके भेजे हुए सर्वत्र संचार करनेवाले सब यमदूतोंको (अपसेधामि) मैं दूर करता हूं ॥ २५२ ॥

प्राण और अपान बलशाली हों । वृद्धावस्थाके पीछे मृत्यु हो । दीर्घ आयु प्राप्त हो और सुखमय जीवन हो । यमके दूत दूर हो जाय । वे इस मनुष्यको न ले जाय ।

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप् ।

२५३ अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः ।

यथा न रिष्या अमृतः सजूरसः

तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम् ॥

अथर्व. ८।२।१३

(अमृतात् आयुष्मतः जातवेदसः अग्नेः) जमर आयुवाले जातवेद अग्निसे (ते प्राणं वन्वे) तेरे प्राणको प्राप्त करता हूं, (यथा अमृतः न रिष्याः) जिससे जमर होकर तू विनष्ट नहीं होगा, (सजूः असः) उसके दीर्घ जीवनके साथ रह, (तत् ते समृध्यतां) वह तेरा कार्य समृद्धि युक्त होवे ॥ २५३ ॥

दीर्घ आयु प्राप्त करनेके लिये प्राणायामसे प्राणका बल बढ़ावो । उससे मनुष्य दीर्घ जीवनसे युक्त होवे । दीर्घ आयु प्राप्त करनेका मनुष्यका वह प्रयत्न सफल हो । मनुष्य दीर्घायु होकर यहां आनन्दके साथ रहे ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२५४ शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ ।
 एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुंचतो अंहसः ॥

अथर्व. ८।२।१८

(व्रीहियवौ ते शिवौ) चावल और जौ तेरे लिए कल्याणकारी और (अ-बलासौ अदो-मधौ स्तां) कफ न करनेवाले और खानेके लिए सुखदायक हों, (एतौ यक्ष्मं वि बाधेते) ये दोनों रोगका नाश करते हैं, और (एतौ अंहसः मुंचतः) ये दोनों पापसे युक्त करते हैं ॥ २५४ ॥

चावल और जौ कल्याण करनेवाले हैं । ये कफको दूर करते हैं और जीवनका आनन्द देते हैं । शरीरके रोगको ये दूर करते हैं और पाप करनेकी इच्छाको नष्ट कर देते हैं ।

ब्रह्मा । आयुः । सतः पंक्तिः ।

२५५ शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे
 त्रीणि चत्वारिं कृणमः ।

इन्द्राग्नी विश्वे देवास्ते

अनुमन्यन्तामहणीयमानाः ॥ अथ. ८।२।२१

(ते शतं हायनान्) तेरी सौ वर्षकी आयु जिसमें (द्वे युगे) दिन रात्रीकी दो सन्धियाँ हैं, तथा (त्रीणि) सही, गर्मी और श्रुति ये तीन काल और (चत्वारि)

(५६)

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

बाल्य तारुण्य, मध्यम जौर वृद्ध ये चार अवस्थाएँ हैं, इस प्रकार आयुको (अ-युतं कृणमः) जट्ट अथवा जखण्डित करते हैं, (इन्द्राग्नी विश्वे देवाः अहृणीयमानाः) इन्द्र जग्नि जौर सब देव संकोच न करते हुए (ते अनुमन्यतां) तेरी आयुका अनुमोदन करें ॥ २५५ ॥

तेरी सौ वर्षकी आयुमें सब दिन जौर रात्री, सर्दी, गर्मी जौर वृष्टि तथा बाल्य तारुण्य मध्यम जौर वृद्ध अवस्था ये सब सुख कर हों । इनमें किसी प्रकार कष्ट न हो ।

ब्रह्मा । आयुः । पुस्तारद्वहर्ता ।

२५६ शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय
ग्रीष्माय परि दक्षसि ।

वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः ॥

जयर्व. ८।२।२२

(शरदे हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय) शरद, हेमन्त, वसन्त जौर ग्रीष्म इन ऋतुजोंके लिए (त्वा परि दक्षसि) तुझे हम सौंप देते हैं, (येषु ओषधीः वर्धन्ते) जिस ऋतुमें जौषधियाँ बढ़ती हैं, वह (वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि) वृष्टिका ऋतु भी तुम्हारे लिए सुखकारी हो ॥ २५६ ॥

सब ऋतु तुम्हारे लिये सुखकर हों । इनमें वृक्ष वनस्पतियाँ जौर जौषधियाँ जिस प्रकार बढ़ती हैं उस प्रकार तुम भी बढ़ते रहो । सब वर्ष तुम्हारे लिये आनंद देनेवाले हों ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२५७ मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम् ।

तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेः

उद्धरामि स मा विभेः ॥ जयर्व. ८।२।२३

(मृत्युः द्विपदां ईशे) मृत्यु द्विपदों पर प्रभुत्व करता है, (मृत्युः चतुष्पदां ईशे) मृत्यु चौपायों पर भी अधिकार चलाता है, (तस्मात् गोपतेः मृत्योः) उस जगत्के स्वामी मृत्युसे (त्वां उद्धरामि) तुझे ऊपर उठाता हूँ, (सः मा विभेः) वह तू जब मृत्युसे मत डर ॥ २५७ ॥

सब द्विपाद जौर चतुष्पदों पर मृत्युका स्वामित्व है । यह सत्य है । पर योग साधनसे उस मृत्युको दूर करके दीर्घ आयु प्राप्त कर सकते हैं । मत डरो जौर वह साधना करो ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२५८ सोऽरिष्टं न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा विभेः ।
न वै तत्र प्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः ॥

जयर्व. ८।२।२४

हे (अ-रिष्ट) जाहिसित मनुष्य ! (सः न मरिष्यति) वह तू नहीं मरेगा, (न मरिष्यसि, मा विभेः) नहीं मरेगा, जतः मत डर । (तत्र न वै प्रियन्ते) वहाँ निश्चयसे नहीं मरते, तथा (अधमं तमः नयन्ति) हीन जन्मकारके प्रति भी नहीं जाते ॥ २५८ ॥

जो डरता नहीं, वह दीर्घायु प्राप्त कर सकता है । धैर्य धारण करनेसे हीन जन्मकार दूर हो सकता है, जौर प्रकाशका मार्ग दीख सकता है, जिस परसे जानेसे मृत्युका अय दूर होकर दीर्घ आयु प्राप्त हो सकती है । जो डरता रहेगा उसकी मृत्यु जोग्र होगी, जतः अयभीत होना हानिकारक है ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२५९ सर्वो वै तत्र जीवति गौरद्वः पुरुषः पशुः ।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥

जय. ८।२।२५

(यत्र इदं ब्रह्म) जहाँ यह ज्ञान और (जीवनाय कं परिधिः क्रियते) जीवनके लिए सुखमयी मर्यादाकी जाती है, (तत्र) वहाँ (गौः अद्वः पशुः पुरुषः) गाय घोडा पशु जौर मनुष्य (सर्वः वै जीवति) सब कोई जीवित रहता है ॥ २५९ ॥

ज्ञान प्राप्त करना और जीवनकी मर्यादा सुदीर्घ करनेके उपाय योग्य रीतिसे करना । इससे सबकी आयु बढ़ सकती है ।

ब्रह्मा । आयुः । आस्तारपंक्तिः ।

२६० परि त्वा पातु समानेभ्यो

अभिचारात् सर्वन्धुभ्यः ।

अमग्निर्भवामृतोऽतिजीवो

मा ते हासिषुरसवः शरीरम् ॥ जय. ८।२।२६

(समानेभ्यः सर्वन्धुभ्यः) समान बान्धवोंसे होने वाले (अभिचारात् त्वा परिपातु) हमकेसे तेरी रक्षा

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें माना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके माना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेशाचारणमें जानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक वे व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।

२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।

३ अपना स्वराज्य

४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।

५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।

६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।

८ सप्त व्याहृतियाँ।

९ वैदिक राष्ट्रगीत।

१० वैदिक राष्ट्रशासन।

११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।

१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।

१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।

१४ नैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।

१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?

१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?

१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?

१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।

१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।

२० मानवके दिव्य देहकी लार्थकता।

२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।

२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।

२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।

२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।

२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।

२६ रक्षकोंके राक्षस।

२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हूँ।

२८ मनका प्रचण्ड वेग।

२९ वेदकी देवता संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।

३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।

३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।

३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।

३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।

३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।

३५, ३६, ३७ वैदिक राज्यशासनमें आरोग्य-मन्त्रोंके कार्य और व्यवहार।

३८ वेदोंके ऋषियोंके नाम और उनका महत्त्व।

३९ रुद्र देवताका परिचय।

४० रुद्र देवताका स्वरूप।

४१ उषा देवताका परिचय।

४२ आदित्योंके कार्य और उनकी लोकसेवा।

४३ विश्वदेवा देवताका परिचय।

४४ वेदमन्त्रोंका भाव समझनेमें प्राचीन ऋषियोंका दृष्टिकान।

४५ पुरुषमें ब्रह्मदर्शन।

४६ वेदभाष्योंका तुलनात्मक अनुशीलन।

४७ वेद हमारे धर्मकी पुस्तक है।

४८ एक मन्त्रके अनेक अर्थ।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जावंगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य (₹) ७: माने रहेगा। प्रत्येकका डा. भ. २) हो जाना रहेगा। इस व्याख्यानोका एक पुस्तक सजिबद लेना हो तो उस सजिबद पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. भ. १॥) होगा।

मन्त्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [वि. सुरत]